शिव लिङ्ग रहस्य और शिवतत्व

रणधीर प्रकाशन

शिवलिंग रहस्य
और शिव तत्व

V. K. GUP
JAMMU TAWI

जिसको जाना नहीं जाता, जो स्वयं ही कार्य के रूप में व्यक्त हुआ है, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है और जिसमें लीन हो जायेगा, उसे लिंग कहते हैं। विश्व की उत्पत्ति और लय का हेतु होने से ही उस परम पुरुष की लिंगता है। लिंग शिव का शरीर है क्योंकि वह इस रूप में अधिष्ठित हैं।

बहुत भ्रम होता है इस लिंग शब्द को लेकर। संस्कृत में लिंग का अर्थ है चिह्न, और इसी अर्थ में यह शिवलिंग के लिये प्रयुक्त होता है। शिवलिंग का अर्थ है—शिव का, परम पुरुष का, प्रकृति के साथ समन्वित चिह्न।

शिवलिंग रहस्य और शिवतत्व

लेखक : सुदर्शन सिंह "चक्र"

शिवलिंग से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी व कथाएँ, विभिन्न पदार्थों के बने शिवलिंग, उपलिंग, पार्थिव पूजन, शिवतीर्थ, शिवनिर्माल्य; शिव की विभिन्न मूर्तियां, शिव पूजा की मुख्य बातें, पंचमुख शिव, भारतीय संस्कृति और शिव, महामृत्युंजय, मंत्र-जप-अनुष्ठान इत्यादि तथा लंकेश्वर-कृत शिवस्तुति इस पुस्तक में समाहित हैं।

मूल्य : २०.०० रुपए

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
हरिद्वार (२४९४०१)

प्रकाशक :

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
श्रवणनाथ नगर,
समीप हैप्पी स्कूल,
हरिद्वार (२४६४०१)

मुद्रक :
राजा ऑफसैट प्रिंटर्स.

लेखक :
श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

आठवां संस्करण — 1998

हम श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' के आभारी हैं जिनकी रचना 'शिव-चरित' से इस पुस्तक के लिए सारी सामग्री संकलित की गई है।

—**प्रकाशक**

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
१. शिवलिंग रहस्य	६
२. प्रथम कथा	१४
३. द्वितीय कथा	२४
४. विभिन्न पदार्थों के बने शिवलिंग	२६
५. उपलिंग	३१
६. नर्मदेश्वर लिंग	३३
७. पार्थिव पूजन	३५
८. शिवतीर्थ	३६
९. शिव निर्माल्य	४३
१०. शिव तत्व	४६
११. शिव की विभिन्न मूर्तियाँ	४६
१२. प्रलयंकर शिव आशुतोष	५७
१३. शिव पूजा की मुख्य बातें	६२
१४. भस्मत्रिपुण्ड्र	६४
१५. पंचाक्षर जप महात्म्य	६४
१६. पंचाक्षर जप	६६
१७. महामृत्युंजय	६७
१८. सोमवार और प्रदोष व्रत	६९
१९. पंचमुख शिव	७०
२०. गुरुतत्व दक्षिणा मूर्ति	७२
२१. आद्याचार्य	७४

२२. रुद्राक्ष की उत्पत्ति और उसके भेद ७८
२३. काशी मरण से मुक्ति ८२
२४. भारतीय संस्कृति और शिव ८७
२५. लंकेश्वर कृत शिवस्तुति ९५
२६. महामृत्युंजय अनुष्ठान का प्रयोजन १०४
२७. कार्य के अनुसार मंत्र जप संख्या १०५
२८. अनुष्ठान की विधि १०६
२९. हवन विधि १०८
३०. संकल्प विधि ११०
३१. महामृत्युंजय जप विधि १११
३२. भूत शुद्धि ११२
३३. विनियोग मन्त्र ११६
३४. ध्यान मंत्र ११८
३५. मानसोपचार पूजन ११९
३६. जप मंत्र ११९
३७. प्रार्थना अर्पण १२०
३८. हवन १२०
३९. शक्तिपीठ १२१

शिव भक्तों के लिए—

शिव उपासना

इस पुस्तक में शिव महिम्न स्तोत्र, शिव ताण्डव, शिव चालीसा, शिव स्तुति, शिवाष्टक, शिवस्तवन, शिव स्तोत्र, शिव नामावली, शिव-ध्यानम्, महामृत्युंजय स्तोत्र व जपविधि, भजन और आरतियाँ दिए गये हैं।

सम्पूर्ण शिव पुराण

अनुवाद—पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी

भगवान शंकर का प्रत्यक्ष रूप 'शिव पुराण' मनुष्य की चित्त शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। बड़े भाग्य तथा अनेक जन्मों के पुण्य से ही बुद्धिमान मनुष्यों में इसके पढ़ने में प्रीति होती है। सौ राजसूय यज्ञों से प्राप्त होने वाला फल इस अकेले शिव पुराण के पढ़ने से मिल जाता है। अमृत पीने वाला तो केवल स्वयं अमर हो पाता है किन्तु शिव पुराण की कथा के अमृत को पीने वाला अपने सारे कुल को ही अमर कर देता है। मुक्ति चाहने वाले प्राणी को प्रतिदिन इस पुराण का पठन-पाठन करना चाहिए। कलयुग में मनुष्यों के हित के लिए ही शकर जी ने ये अमृतरूपी पुराण कहा है।

सन्तवाणी

संग्रहकर्ता—एच० बी० सिंह

इस पुस्तक में, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, मीराबाई, गुरुनानक ब्रह्मानन्द, स्वामी रामतीर्थ, दादूदयाल, सुन्दरदास, रविदास इत्यादि कई सन्तों की चुनी हुई वाणी का संग्रह है।

श्री भैरव उपासना

इस ग्रन्थ में भैरव उत्पत्ति की कथा, भैरव चालीसा, भैरवाष्टक, भैरव के १०८ नाम, भैरव सहस्त्र नाम स्तोत्र, वटुक भैरव यन्त्र, भैरव उपासना विधि, भैरों नाथ दन्त कथा और भैरव जी की आरतियाँ इत्यादि सम्मिलित की गई हैं।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

मां गंगा

गंगा के बारे में भरपूर जानकारी, गंगा की महिमा, गंगा और भागीरथ की कथा, गंगा अवतरण की कथा, गंगा का उद्गम, गंगोत्री और गौमुख यात्रा, पद्म पुराण में गंगा महात्म्य, स्कन्द पुराण में गंगा की महिमा, बाल्मीकि कृत गंगाष्टक और जगन्नाथ कृत गंगा लहरी व आरतियों से परिपूर्ण।

रुद्राक्ष महात्म्य और धारण विधि

संग्रहकर्ता—बाबा औढरनाथ 'तपस्वी'

रुद्राक्ष महात्म्य, रुद्राक्ष की उत्पत्ति, रुद्राक्ष के भेद, रुद्राक्ष धारण विधि, रुद्राक्ष के १४ प्रकार के नाम और महिमा, रुद्राक्ष के लक्षण और मन्त्र न्यास, रुद्राक्ष की परमशक्तियाँ, रुद्राक्ष का विविध रोगों में प्रयोग इत्यादि अनेक बातों का संकलन।

कर्मकाण्ड भारती (ब्राह्मण पुस्तक)

नित्यकर्म विधि, माला के संस्कार की विधि, जप का नियम व साधन प्रक्रिया के भेद, यज्ञोपवीत बनाने और धारण करने के मन्त्र, शिखा बन्धन विधि, तिलक धारण विधि, भस्म धारण मन्त्र तथा विधि, माला पिरोने और धारण करने की विधि, सन्ध्योपासना विधि, गायत्री मूल एवं भाषा अर्थ, गायत्री पुरश्चरण, गायत्री जप के उपरान्त २४ मुद्राओं के चित्र, गायत्री कवच, गायत्री स्तोत्र, गायत्री सहस्रनाम, स्वस्तिवाचन, गणेश पूजन, षोडपमातृका पूजन, नवग्रह पूजन, पंचलोकपाल पूजन, दशदिक्पाल पूजन, दुर्गा पूजन, महालक्ष्मी पूजन, शिव पूजन, अंग पूजा, श्री सूक्त, लक्ष्मीसूक्त, आवरण पूजा तथा यन्त्र तथा मन्त्र महोदधि मत, वशिष्ठ मत, विश्वामित्र मत और अनेकों प्रकार की सामग्री।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

शिवलिंग रहस्य

अव्यक्त लिंगमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम्
अनाद्यनन्तं विश्वस्य यदुपादानकारणम् ।
तदेवमूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका
तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।।

(वायुसंहिता, उत्तर भाग, २४.७-८)

यतो न तदनाज्ञातं कार्यायप्रभवेत्स्वतः ।
ततो जातस्य विश्वस्य तत्रैव विलयोयतः
अनेन लिंगतां तस्य भवेन्नान्येन केनचित्
लिंगं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम् ।।

(वायुसंहिता, उत्तर भाग, २४.११-१२)

सा भगाख्या जगद्धात्री लिंगमूर्तेस्त्रिवेदिका
लिंगस्तु भगवान् द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः ।
लिंगमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरिस्थितः ।
लिंगवेदि समयोगादर्धनारीश्वरोभवत् ।।

(लिंगपुराण, द्वितीय खण्ड, ६६.६-८)

त्रिगुण की जो अव्यक्तावस्था है, जिससे त्रिगुण उत्पन्न हुआ है उसी में लीन हो जाता है, विश्व के उस उपादान

कारण को, जो अनादि और अनन्त है, लिंग कहते हैं। उसी गगनात्मिका मौलिक प्रकृति का नाम माया है। उसी से यह सम्पूर्ण जगत उत्पन्न होता है।

जिसको जाना नहीं जाता, जो स्वयं ही कार्य के रूप में व्यक्त हुआ है, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है और जिसमें लीन हो जायगा, उसे लिंग कहते हैं। विश्व की उत्पत्ति और लय का हेतु होने से ही उस परमपुरुष की लिंगता है। उसकी लिंगता का और कोई कारण नहीं है। लिंग शिव का शरीर है क्योंकि वह इस रूप में अधिष्ठित है।

द्विज श्रेष्ठ ! लिंग के आधार रूप में जो तीन मेखला-युक्त वेदिका है वह भग रूप में कही जाने वाली जगद्धात्री महाशक्ति है। इस प्रकार आधार सहित लिंग जगत का कारण है, उमा-महेश्वर स्वरूप है।

भगवान शिव स्वयं ज्योतिर्लिंग स्वरूप तमस् से परे स्थित हैं। लिंग और वेदी के समायोग से वे अर्धनारीश्वर होते हैं।

पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिंगे पूर्णोर्चनं भवेत्।

(अग्निपुराण, अध्याय ५४)

बहुत भ्रम होता है इस लिंग शब्द को लेकर। संस्कृत में लिंग का अर्थ है चिह्न, और इसी अर्थ में यह शिवलिंग

के लिए प्रयुक्त होता है। शिवलिंग का अर्थ है शिव का, परमपुरुष का, प्रकृति के साथ समन्वित चिह्न।

देवताओं की पूजा बेर के (शरीर के) रूप में होती है, लेकिन परमपुरुष अशरीर नहीं हैं, इसलिए परम पुरुष की पूजा दोनों प्रकार से होती है। शरीर के रूप में और वह शरीर आराधक की भावना के अनुसार होता है। साथ ही प्रतीक के रूप में और यह प्रतीक जब अनन्त का होता है तब गोलाकार-अण्डाकार बनेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आपको अनन्त का या ज्योति का स्वरूप बनाने को कहा जाय तो आप क्या बनाओगे? यह जब प्रकृति समन्वित होता है तब प्रकृति को अभिव्यक्त करने के लिए तीन मेखलावाली (क्योंकि प्रकृति त्रिगुणात्मिका है) वेदी बनानी पड़ती है। इसी को भग कहते हैं, लेकिन यहाँ भग का अर्थ स्त्री-जननेन्द्रिय नहीं है। 'भगवान्' में जो 'भग' है जिसका अर्थ है छः ऐश्वर्य (ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य) सम्पूर्ण रूप से एकीभूत। इस अर्थ में वह वेदिका निखलैश्वर्यमयी महाशक्ति का प्रतीक है।

परमपुरुष की हिन्दू पौराणिक मत में पाँच रूपों से उपासना करने की परम्परा है। इसे पञ्चदेवोपासना कहते हैं। शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—इन पाँचों का ही गोल प्रतीक आपने देखा है। शिव लिंग की चर्चा हम कर ही रहे हैं। विष्णु के प्रतीक भगवान् शालिग्राम को

आपने सभी वैष्णव मन्दिरों में देखा है। विष्णु के जितने अवतार हैं, लक्षण—भेद से शालिग्राम शिला सबकी प्रतीक होती है और शालिग्राम शिला के साथ भी गोमती चक्र रखना पड़ता है। यह महाप्रकृति का, ऐश्वर्यमय भग का स्वरूप है जो शिवलिंगार्चन में वेदिका के रूप में है। शक्ति की गोल पिण्डियाँ देश में बहुत अधिक स्थानों पर हैं—ग्रामीण क्षेत्रों में तो काली पीठ पर केवल यह पिण्डियाँ ही होती हैं। गणेश की स्थापना प्राय: प्रत्येक पूजन के आरम्भ में सुपारी अथवा गोबर की गोल पिण्डियों पर ब्राह्मणों को कराते आपने देखा है। भगवान् सूर्य का प्रत्यक्ष प्रतीक आकाश का सूर्य-मण्डल जैसा है, आप जानते हैं और जहाँ भी ग्रहों के चक्र बनाये जाते हैं, सूर्य-मण्डल को गोला-कार ही बनाना पड़ता है। इस प्रकार इन पञ्चदेवों की लिंग बनाकर अर्थात् चिह्न बनाकर उपासना होती है।

वैसे शिव के साकार विग्रह की भी पूजा होती है। अनेक मन्दिरों में शिव-पार्वती की साकार मूर्तियां भी हैं, किन्तु उन मन्दिरों में भी लिंग की स्थापना है और उसे साकार विग्रह की अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त है। ठीक ऐसे ही भगवान नारायण के अथवा उनके किसी भी अवतार के मन्दिरों में शालिग्राम शिला को प्रमुख महत्ता देकर रखा जाता है, उसकी पूजा की जाती है।

शिवलिंग पुरुष के उपस्थ के रूप में नहीं है, ऐसा हम नहीं कह रहे हैं। ऐसा भी है, लेकिन यह बात बहुत पीछे की है। देश में और वृहत्तर भारत के (जावा, सुमात्रा, आदि के) मन्दिरों में कुछ ऐसे भी मन्दिर हैं जिनमें शिव लिंग को ठीक शिश्नाकार बनाया गया है। तंत्र की परम्परा में वीराचार, वामाचार आदि शिवपूजक सम्प्रदाय हैं, इसलिए इन सम्प्रदायों को लिंगोद्भव की वह कथा प्रिय है और लिंग का वही कारण भी, जो आगे दूसरी कथा के रूप में दी जा रही है। लेकिन जहाँ शिवलिंग का स्वरूप ठीक अण्डाकार है या उससे मिलता-जुलता है, वह सम्पूर्ण रूप से परमपुरुष का प्रतीक है, अङ्गविशेष नहीं।

जहाँ अङ्गविशेष की बात है, वहाँ भी यह ध्यान रखना है कि जैसे हमारे अपने शरीर में शरीर और जीवात्मा अलग-अलग हैं, इसलिए शरीर के अंग श्रेष्ठ और कनिष्ठ हैं, ऐसा भेद भगवान् के किसी भी रूप के श्रीविग्रह में किया नहीं जा सकता। यदि एक मूर्ति सोने से या चीनी से बनायी जाय तो उसके पैरों की अंगुलियों और नेत्र अंग में क्या श्रेष्ठता-कनिष्ठता कल्पित की जा सकेगी? भगवान् का सगुण-साकार विग्रह भी सम्पूर्ण सच्चिदानन्दघन है, इसलिए आराधक के भाव की सविधि पूर्ति सम्पन्न करने के लिए उसमें अंग विशेष की प्रतीति होती है, अन्यथा उसमें पैर

का नख भी वैसा ही सच्चिदानन्दघन स्वरूप स्वयं प्रकाश सर्वज्ञ सर्वसमर्थ है जैसा नेत्र, हृदय या अन्य कोई अंग। उनमें श्रेष्ठता-कनिष्ठता की कल्पना दोष है। अतः जब लिंग को भगवान् शिव का उपस्थ मानते हैं उस रूप में भी—जहाँ शिवलिंग शिश्नाकार स्थापित है वहाँ भी—अंग विशेष हो करके भी वहाँ सम्पूर्ण रूप से सम्यक् शिव हैं और सच्चिदानन्दघन के स्वरूप हैं, व्यक्ति के अंग के समान उसमें एक अंग की सीमा और अल्पशक्तित्व सम्भव नहीं है।

प्रथम कथा—

पाद्मकल्प के प्रारम्भ में भगवान् ब्रह्मा जब देवताओं आदि की सृष्टि कर चुके, एक दिन स्वेच्छा से घूमते हुए क्षीरसागर पहुँचे। उन्होंने देखा, वहाँ, भगवान् नारायण शुभ्र श्वेत सहस्रफणमौलि शेष की शय्या पर शांत अधलेटे से अवस्थित हैं। क्षीरसागर की तरंगे इस प्रकार उठ रही हैं कि उन्होंने वहाँ विशाल भवन-निर्माण कर रखा है। दुग्ध की तरंगें ही वहाँ स्तम्भ बनी हैं, भूमि बनी हैं, ऊपर की छत बनी हैं। तरंगों से क्षीर उठता-परिवर्तित होता रहता है, किन्तु भवन स्थिर अपरिवर्तनीय एकरस बना है। उज्ज्वल नीलकान्त भगवान् शेषशायी के श्रीअंग की

किरणों से सतत चन्द्रोज्वल ज्योत्स्ना सम्पूर्ण क्षीरोदधि के अन्तःकक्ष को प्रकाशित कर रही है। सहस्त्रफणा शेष अत्यन्त निष्काम्य, शान्त, अर्धोन्मीलित लोचन अवस्थित हैं। उनकी कुण्डली पर शेषशायी के श्रीचरणों को अपने अंक में लिए ऐश्वर्य, सौन्दर्य, सौकुमार्य शोभा की अधिष्ठात्री अपने अतिशय कोमल कर चरण-सेवा के लिए उठाती हैं और संकुचित हो रही हैं जैसे हिचक रही हैं कि 'मेरे कर-स्पर्श से भी इन चरणों को कष्ट न हो।' पद्मा के करों की अरुणाभ किरणें ही उन चरणों का संचालन कर रही हैं। गरुड़, नन्द, सुनन्द आदि पार्षद करवद्ध विनम्र खड़े हैं। यह देखकर ब्रह्मा को बहुत आश्चर्य हुआ।

सृष्टिकर्त्ता ने प्रारम्भ में तप किया था। अन्तःकरण में नारायण का साक्षात्कार भी किया था, किन्तु सृष्टि की व्यस्तता में वे भूल ही गये कि जो अन्तर्यामी है वही बाह्य विराट् का भी अधिष्ठाता है। ब्रह्मा जी रजोगुण के अधिष्ठाता हैं और रजोगुण में विस्मृति, क्षोभ तथा क्षोभ में विकार न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अब तक ब्रह्मा समझ रहे थे—'सृष्टि के वही मूल कारण हैं, वही सबके स्वामी और पितामह हैं' इसलिए विष्णु को इस प्रकार अविचल शयन करते देखकर उन्हें क्रोध आया। उन्होंने समीप जाकर कहा—'मुझे देखकर भी अभिमानी के समान

सोने वाले तुम कौन हो ? वत्स ! उठो, देखो, मैं तुम्हारा स्वामी आया हूं।'[1]

शेषशायी ने केवल दृष्टि उठायी। मुख पर मन्दस्मित आया। बोले—'वत्स ! तुम्हारा मंगल हो। आओ इस आसन पर बैठो। तुम्हारा मुख व्यग्र क्यों हो रहा है ? तुम्हारे नेत्र कुटिल क्यों हैं ?'

अब ब्रह्मा को और भी क्रोध आया। वे झल्लाकर बोले—'काल के प्रभाव से तुमको अभिमान हो गया है। मैं तुम्हारा रक्षक और जगत का पितामह हूँ। तुम्हें मेरा सम्मान करना चाहिए।'

'जगत मुझ में स्थित है। तुम चोर की भाँति उसे अपना क्यों कहते हो ?' भगवान् विष्णु ने सीधे बैठते हुए ब्रह्मा को डाँटा—'तुम मेरे नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे पुत्र हो। पुत्र पिता का सम्मान न करे तो इससे पिता की कोई हानि नहीं होती, केवल पुत्र कुपुत्र सिद्ध होता है।'

'मैं स्रष्टा, मैं स्वामी'—यह दोनों में विवाद होने लगा। ब्रह्मा ने विष्णु के सिर पर हाथ से प्रहार किया

---

१. ध्यान रखना चाहिए कि इस चरित्र में परात्पर परमब्रह्म सदाशिव हैं। ब्रह्मा और विष्णु एक ब्रह्माण्ड के स्रष्टा एवं पालक हैं। अतः इनमें रजोगुण विशिप्ट होने के कारण अहंकार तथा इसके विकार कभी-कभी आते हैं। प्रायः तब जब महेश्वर अपनी कोई दिव्य लीला प्रकट करने के लिए ब्रह्मा या विष्णु को माध्यम बनाना चाहते हैं।

फिर दोनों में युद्ध छिड़ गया। दोनों ने अपने वाहनों का स्मरण किया। ब्रह्मा हंस पर बैठे और विष्णु गरुड़ पर। दोनों के वाहन भी परस्पर युद्ध करने लगे। देवता क्या करें। वे विमानों पर बैठकर वहाँ आये, किन्तु इन बड़ों के बीच में बोलने का साहस कोई कैसे कर सकता था। जब कोई समर्थ क्रोधावेश में हो, छोटे का बोलने में अकल्याण ही है। ब्रह्मा और विष्णु के युद्ध में सामान्य अस्त्र तो छुए ही नहीं गये। युद्ध ही दिव्यास्त्रों से प्रारम्भ हुआ और शीघ्र ही दोनों में-से विष्णु ने माहेश्वर और ब्रह्मा ने पाशुपत अस्त्र उठा लिया। इन परम अमोघ अस्त्रों को देखकर देवता भय से व्याकुल होकर भाग गये ; क्योंकि प्रयोग से पहले ही इन अस्त्रों के तेज से दिशाएं जैसे जलने लगी थीं—सृष्टि के पूर्ण होने से पहले ही प्रलय की सम्भावना उपस्थित हो गयी थी।

देवताओं के लिए अब एक ही आश्रय थे भगवान विश्वनाथ। वे भागे हुए कैलाश पहुँचे। यह प्रणवाकार शिवधाम है। यहाँ रत्नमण्डप में मणियों के आसन पर उमा-महेश्वर विराजमान थे। वाम उरु पर दक्षिण चरण रखे कर्पूरगौर भगवान् शिव की देवताओं ने स्तुति की।

'तुम्हारा मंगल हो। ब्रह्मा और विष्णु के युद्ध को मैं जानता हूँ।' भगवान् शंकर ने आश्वासन दिया—'मैं उसे शान्त करूँगा।' अपने एक सौ गण शंकर ने उस युद्धस्थल

में भेज दिये यह आदेश देकर कि 'दिव्यास्त्रों के प्रभाव को उस क्षेत्र में ही सीमित रखना।'

प्रणवाकार पञ्चमण्डलमण्डित भद्र रथ में भगवान् भवानीनाथ विराजमान हुए। कुमार कार्तिक, गणेश तथा गण भी साथ हुए। देवता पीछे-पीछे चलने लगे। युद्धस्थल में पहुंचकर अदृश्य रहते हुए शिव ने एक बार उस अकल्पनीय संग्राम को देखा। दिव्यास्त्रों की ज्वाला से मानो त्रिलोकी भस्म ही हो जायगी, ऐसा क्षण उपस्थित हो गया। सहसा भगवान् शंकर दोनों के मध्य में अनादि-अनन्त ज्योतिर्मय स्तम्भ के रूप में प्रकट हुए। इस ज्योतिर्लिंग के प्रकट होते ही माहेश्वर एवं पाशुपत दोनों अस्त्र शान्त होकर उसी ज्योति में लीन हो गये। ब्रह्मा और विष्णु दोनों चौंके।

'यह क्या है ? हम दोनों के मध्य यह क्या आ गया ? कहाँ से प्रकट हुआ ?' विष्णु ने उस प्रकाशलिंग को ध्यान से देखना प्रारम्भ किया।

'मैं सृष्टि का पितामह! मैं भी नहीं जानता कि यह क्या है। तुम भी नहीं जानते, तब हम दोनों से भिन्न यह तीसरा तत्व कहाँ से प्रकट हुआ ? इसका आदि-अन्त कहाँ है—यह देखने जाना चाहिए।'

'ठीक है, इसका पता लगाया ही जाना चाहिए। मैं इसका आदि देखने जाता हूं।' विष्णु ने कहा। जो सबके

आदि हैं, उपादान हैं, उनकी रुचि आदि को—कारण को जानने की हो, यह स्वाभाविक ही था। उन्होंने वाराह रूप धारण किया और उस लिंग के नीचे की ओर तीव्र गति से—गरुड़ से भी, मन से तीव्र गति से—चल पड़े।

'मैं इसका अन्त देखना चाहता हूँ।' ब्रह्मा जी सृष्टि बनाते हैं, इसलिए उसके अन्त की ओर उनकी जिज्ञासा दौड़ती है। हंस का स्वरूप बनाकर वे उस ज्योतिर्लिंग के ऊपर की ओर उसका सिरा देखने प्रायः उसी गति से चले जिस गति से वाराह मूर्ति विष्णु नीचे गये थे।

श्रीहरि पाताल तक नीचे गये, किन्तु उस ज्योतिस्तम्भ का मूल प्राप्त नहीं हुआ। खिन्न होकर वे युद्धस्थल में अर्थात् क्षीर सागर में अपने स्थान पर लौट आये क्योंकि यह युद्ध वहीं हुआ था।

ब्रह्मा जी ऊपर जा रहे थे, उनको ऊपर से गिरता हुआ एक केतकी का पुष्प मार्ग में मिला। वह अत्यन्त सुरभित था, अम्लान था। भगवान् शिव ने शिरःकम्पन से उसे गिरा दिया था। ब्रह्मा ने उस पुष्प से पूछा—'तुम क्यों गिरते हो? तुमको किसने धारण किया था? तुम्हारा पतन तो उचित नहीं है क्योंकि तुममें सुगन्धि है, मलिनता नहीं है। गिरो मत।'

पुष्प—'मैं इस प्रादुर्भूत स्तम्भ के ऊपर के मध्य देश से ही गिरा हूँ।' (पुष्प भगवान् शंकर के कण्ठदेश से गिरा था)।

ब्रह्मा भी निराश हो गये कि अभी तक वे पुष्प के गिरने के स्थान मध्यदेश तक ही नहीं पहुँचे हैं तब उसके ऊपरी सिरे तक कैसे पहुँच सकेंगे। लेकिन रजोगुण का अहंकार पराजय स्वीकार नहीं करता। अपने को छोटा स्वीकार करने की अपेक्षा उसे कोई भी असत्य-छल स्वीकार करने में हिचक नहीं होती। ब्रह्मा तो रजोगुण के अधिष्ठाता ही हैं। उनको लगा, 'मैं ऊपर नहीं पहुँचा' यह बात विष्णु के सामने कैसे स्वीकार करूँ। उन्होंने पुष्प से कहा—'मैं सृष्टिकर्ता हूं। तुमको मेरी सहायता करनी चाहिए। इसका मैं तुम्हें विपुल पुरस्कार दूँगा। इस स्तम्भ के सिरे तक मैं पहुँच सकूँगा, इसकी मुझे आशा नहीं है, लेकिन विष्णु के सामने मैं जब कहूँगा 'मैं इसके सिरे तक पहुँच गया था' तब तुम्हें साक्षी देनी चाहिए। तुम्हें कहना चाहिए कि मैंने स्तम्भ का अन्त देखा है। तुम भी विपत्ति में हो, तुम्हारा पतन हुआ है और मैं भी विपत्ति में हूं, मेरा सम्मान आपद्ग्रस्त है। विपत्ति में मान और पतन से बचने के लिए असत्य का सहारा लेना दोष नहीं है। समान विपत्ति ने हम दोनों को मित्र बना दिया है। तुमको मेरी मैत्री का आदर करना चाहिए।'

केतकी के पुष्प ने ब्रह्मा की बात स्वीकार कर ली। एक साधारण पुष्प सृष्टिकर्त्ता की अवज्ञा कर नहीं सकता था, यद्यपि केतकी का पुष्प साधारण पुष्प नहीं था, वह

शिव का शृंगारभूत था, लेकिन प्रत्येक जीव परमात्मा का अभिन्न अंग हैं, पर उससे पृथक् होकर जीव का अपना वह सब ऐश्वर्य समाप्त हो जाता है और वह तुच्छ हो जाता है। शिव के अंग से स्खलित होकर केतकी के पुष्प में यह तुच्छता आ गयी थी और इसीलिए उसमें अधर्म की स्वीकृति स्थान पा सकी।

ब्रह्मा क्षीर सागर लौट आये। विष्णु श्रान्त-हताश बैठे थे। उन्होंने ब्रह्मा से स्पष्ट कह दिया, 'मैं असफल होकर लौटा हूँ।' ब्रह्मा तो आनन्द से नृत्य करने लगे। उन्होंने कहा—'मैंने इस स्तम्भ का सिरा देखा है और इसके ऊपर रखा हुआ यह केतकी का पुष्प मैं उठा लाया हूँ। तुम चाहो तो इस पुष्प से पूछ लो।'

श्रीहरि ने पूछना आवश्यक नहीं माना, किन्तु पुष्प ने स्वयं ही ब्रह्मा की बात का समर्थन कर दिया। अब विष्णु ने स्वीकार किया—'सचमुच आप महान् हैं, अतः पूजनीय हैं।' ब्रह्मा को उन्होंने प्रणाम किया और षोडशोपचार से उनका पूजन करने को प्रस्तुत हुए। इसी समय उस अग्नि स्तम्भ से नीललोहित त्रिलोचन भगवान् धूर्जटि प्रकट हो गये। उन्हें देखते ही विष्णु ने उनको साष्टांग प्रणिपात किया और प्रस्तुत पूजा-सामग्री से विधिपूर्वक पूजन करके अञ्जलि बांधकर बोले—'आप मुझ पर प्रसन्न हों।'

भगवान् शिव ने कहा—'तुम पर मैं प्रसन्न हूँ। तुम

सत्यवक्ता हो। तुमको ईश्वरत्व प्राप्त हो। मुझ से तुम को साम्य प्राप्त हो और मेरे समान ही सर्वत्र तुम्हारा सत्कार हो। संसार में तुम्हारी पूजा होगी और उसमें मैं संतुष्ट हूंगा।'

ब्रह्मा ने कहा—'नीललोहित चन्द्रशेखर! डरो मत। मैं तुमको जानता हूँ। तुम तो मेरे भ्रूमध्य से प्रकट हुए हो। तुमने जन्मते ही रुदन किया, तब मैंने ही तुम्हारा नाम रुद्र रखा। मेरी शरण आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

भगवान् महेश्वर इससे क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपने भ्रूमध्म से एक अद्‌भुत पुरुष प्रकट किया। यह उनके ही समान त्रिलोचन, लेकिन बहुत भयंकर, अत्यन्त कृष्ण वर्ण था। बहुत उग्र स्वर होने के कारण उसे भैरव कहा गया। उसने प्रकट होते ही अञ्जलि बाँधकर शिव से पूछा—'मैं क्या सेवा करूँ?'

शिव—'इस ब्रह्मा की तीक्ष्णधार खड्‌ग से पूजा करो।'

भैरव ने ब्रह्मा का केश पकड़ा और उनका असत्यभाषी पाँचवाँ सिर काट दिया। तब से ब्रह्मा चतुर्मुख हो गये। भैरव उनके और भी सिर काटना चाहते थे, लेकिन शीघ्रतापूर्वक ब्रह्मा ने अपनी माला, आभूषण आदि त्याग दिये, केश खोल दिये और काँपते हुए भैरव के ही पैरों में गिर

पड़े । ब्रह्मा की यह भयकातर दशा देखकर भगवान् विष्णु को दया आ गयी । उन्होंने भगवान् शिव से प्रार्थना की—'आपने इन्हें पाँच सिर दिये थे, ये आपकी प्रतिमूर्ति थे। अब उनमें से एक सिर तो चला ही गया। इन चतुर्मुख को क्षमा कर दें।'

संकेत से भैरव को रोककर शिव ने ब्रह्मा से कहा—'तुमने कपट किया, अपनी पूजा तथा ईश्वरत्व के लोभ में तुम झूठ बोले, इसलिए लोक में तुम्हारी पूजा नहीं होगी।'

ब्रह्मा जी ने अपनी चारों अञ्जलि बाँधकर स्तुति की, प्रार्थना की—'मेरे इस कटे सिर का अधःपात न हो, ऐसी कृपा करें और मुझ पर भी अनुग्रह करें। लोक में जिसकी कोई पूजा नहीं करेगा, वह लोकस्रष्टा के पद पर कैसे रह सकता है?'

शिव ने वरदान दिया—'तुम्हारे सिर को मैं अपनी मुण्डमाला में धारण करूँगा। अग्निहोत्र में, स्मार्त-कर्म में और यज्ञ में तुम्हारा सत्कार होगा। तुम्हारी पूजा—आवाहन के बिना यज्ञ निष्फल हो जायगा।'

अब शिव ने केतकी पुष्प को तिरस्कृत किया—'मिथ्याभाषी पुष्प! आज से मेरी पूजा में तू नहीं होगा।'

सभी देवताओं ने तिरस्कारपूर्वक उस पुष्प की ओर देखा। पुष्प से अश्रु गिरने लगा। उसने कातर स्वर में

कहा—'आप मेरा जन्म ही निष्फल न करें। अपराध मेरा नहीं है, सृष्टिकर्ता की अवज्ञा करने का साहस मैं नहीं कर सका—यह आप सर्वज्ञ जानते हैं।'

'मैं तुझे स्वीकार नहीं करूँगा।' शिव ने कुछ दयार्द्र होकर कहा—'विष्णु तथा अन्य देवता तेरा धारण करेंगे। मेरे मण्डप की रचना में तेरा उपयोग हो सकेगा।'

अब भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मा और विष्णु दोनों से ही कहा—'मेरे दो रूप हैं—सकल और निष्कल। दोनों परस्पर अभिन्न हैं। मेरा यह साकार रूप सकल है इसमें समस्त कलाएँ हैं और यह स्तम्भ रूप निष्कल है। इस लिंग रूप में ही अब से मेरी मुख्यार्चा होगी। यह लिंग निष्कल ब्रह्म का प्रतीक है। इसकी अर्चा करते रहो।'

सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पञ्चकृत्यों का तथा ओंकार का उपदेश करके भगवान् शंकर तिरोहित हो गये। इसलिये शिव की आराधना लिंग रूप में सर्वत्र की जाती है।

द्वितीय कथा

यह कथा वाराह कल्प की है। पहली कथा से बहुत पीछे की, सैकड़ों कल्प पीछे की है।

दारुक वन में बहुत से मुनिगण एकत्र रहते थे। उनमें वशिष्ठ आदि प्रसिद्ध ऋषि भी थे। वे सब उस समय

वैदिक कर्मकाण्ड में निष्ठा रखते हुए समस्त कर्मों को सावधानी से कर रहे थे। इस प्रवृत्ति में लगे लोगों को निवृत्ति का उपदेश करने के लिये, निवृत्ति का प्रत्यक्ष स्वरूप दिखलाने के लिये उन ऋषियों पर अनुग्रह करके भगवान् नीललोहित वहाँ पहुँचे। वे दिगम्बर थे। त्रिनेत्र, द्विभुज, बिखरी जटाएँ, अत्यन्त सुन्दर सुकुमार अंग, विशाल बाहु, विशाल वक्ष, अर्धोन्मीलित दृग, उन्मत्त के समान स्वेच्छा से वहीं विचरण करने लगे।

मुनिगण उस समय अपने उटजों में नहीं थे। वे लोग वन में कुश, फल, समिधादि लाने गये थे। मुनि पत्नियों ने अकल्पनीय सुन्दर युवा उस विचित्र पुरुष को देखा जो सम्पूर्ण नग्न था, जिसकी सुनहरी जटाएँ बिखरी हुई थीं, जो बिना किसी ओर देखे इस तरह घूम रहा था जैसे वही सृष्टि का सम्राट् हो। मुनि-पत्नियों के हृदय में विकार उत्पन्न हुआ। काम के आवेग ने उन्हें अस्थिर कर दिया। अरुन्धती ने रोका, किन्तु ऐसे विकार में जब आवेश होता है, किसी का भी उपदेश कभी किसी के काम नहीं आया है। वे स्त्रियाँ मुनि-पत्नियाँ थीं, संयमी थीं, पतिव्रता थीं किन्तु इस समय उनका संयम और उनका विवेक उनका साथ छोड़ गया था। वे अस्त-व्यस्त कुछ देर अपनी कुटिया के द्वार पर खड़ी रहीं और फिर उस पुरुष के पीछे चल पड़ीं। उनमें कुछ वृद्धाएँ भी थीं। जब वही धैर्य खो चुकी

थीं, तब जो युवा थीं उनका वर्णन व्यर्थ है। उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे। वे अर्धनग्न प्रायः हो चुकी थीं। कुछ गाने लगीं, कुछ नाचने लगीं। कुछ आवेश से मूर्छित हो चुकी थीं। वे परस्पर ही एक दूसरे का आलिंगन करती थीं, हाव-भाव कटाक्षों से रुद्र को आकर्षित करना चाहती थीं। प्रायः उन सबके केश खुल गये थे। उन्होंने मण्डल बनाकर रुद्र का मार्ग रोक लिया। बोलीं—'भद्र! आप कौन हैं? कहाँ से पधारे? भुवनसुन्दर! हम पर प्रसन्न हो जाओ। यहाँ बैठो।' लेकिन शिव आत्मलीन थे, उन्होंने किसी की ओर देखा नहीं था। वे ऐसे चल रहे थे जैसे उनके चारों ओर स्त्रियाँ न हों, जंगल के वृक्ष या पशु हों।

ऋषिगण वन से लौटे। उन्होंने अपनी पत्नियों की यह अस्त-व्यस्त स्थिति और उनके मध्य इस कृष्ण वर्ण दिगम्बर पुरुष को देखा। मनुष्य के मन में बड़ी कठिनाई से अपनों का अपराध आता है। जहां भी व्यक्ति की ममता है, लगता है कि हमारा ममतास्पद दोषी नहीं हो सकता, दूसरा ही अपराधी है। मुनियों ने कुछ पूछने-सोचने का प्रयत्न नहीं किया। उन्हें लगा, यह पुरुष ही हमारी पत्नियों को आकर्षित करके भ्रष्ट करता है। उन्होंने क्रोधपूर्वक शाप दिया—'तू इन स्त्रियों के मध्य दिगम्बर

रहकर इनकी मर्यादा का नाश कर रहा है, इसलिये तेरा उपस्थ तत्काल गिर जाय।'

उपस्थ गिर गया। गिरते ही प्रज्ज्वलित हो गया। मार्ग में जो कुछ पड़ा, उसे भस्म करता हुआ चारों ओर घूमने लगा। अब वे सब मुनिगण भय से संत्रस्त हो गये। सब वहाँ से ब्रह्म लोक ब्रह्मा के पास गये। उन्होंने पुकारा कि—'अपनी सृष्टि को आप कृपा कर बचाओ। यह नीललोहित का गिरा हुआ लिंग त्रिलोकी को भस्म करने के लिए गतिमान हो गया है।'

ब्रह्मा—'तुम सबने नहीं पहचाना कि यह भगवान् रुद्र हैं। ये कोई अपराधी नहीं थे। मध्याह्न में आये परिग्रहहीन दिगम्बर निर्दोष अवधूत को अतिथि मानकर सत्कार करना तुम्हारे लिए उचित था। तुम गृहस्थ हो और गृहस्थ के लिए अतिथि परम पूज्य है। तुम लोगों ने जो शाप देकर अतिथि का तिरस्कार किया, इसलिए तुम्हारे समस्त पुण्यों का नाश हो गया।'

'हमसे अपराध हुआ। हमारे पुण्यों का नाश तो हो ही गया, किन्तु अब तो सृष्टि की रक्षा की समस्या सम्मुख उपस्थित है। आप इसका कोई उपाय करें।' मुनियों ने बहुत खिन्न स्वर में ब्रह्मा से प्रार्थना की।

'भगवान् रुद्र के तेज को कौन सह सकता है? आप

सब उनकी ही शरण जायं । इसके अतिरिक्त उनकी अवज्ञा का और कोई दूसरा प्रतिकार मुझे सम्भव नहीं दीखता।' ब्रह्मा ने कहा ।

मुनिगण लौटे । शिव अन्तर्ध्यान हो चुके थे । उनका प्रज्वलित लिंग बहुत अधिक विनाश कर चुका था। मुनियों ने अब शंकर की स्तुति प्रारम्भ की । वे आशुतोष प्रकट हुए । उन्होंने मुनियों से कहा—'केवल पार्वती ही मेरे इस लिंग को धारण करने में समर्थ हैं । वह स्वयं भगस्वरूप धारण करें तो यह शान्त हो सकता है ।'

मुनियों ने पार्वती जी का स्तवन किया, उनकी आराधना की। भगवती जगदम्बिका प्रकट हुईं। उनको भी ऋषियों पर और सृष्टि के निरीह प्राणियों पर दया आयी उन्होंने योनिरूपा होकर उस लिंग को धारण किया। ऋषियों ने उस शान्त लिंग का वहाँ अर्चन किया और यह लिंग हाटकेश नाम से विख्यात हुआ क्योंकि वह प्रज्वलित स्वर्ण के समान दिव्य वर्ण का था ।

इस दूसरी घटना के कारण लिंग को शिश्न भी माना जाने लगा और वामाचार आदि सम्प्रदायों में शिश्नाकार लिंग की अर्चना भी प्रचलित हो गई ।

●

विभिन्न पदार्थों के बने शिवलिंग

कस्तूरी और चन्दन से बना शिवलिंग शिव-सायुज्य देता है।

फूलों से बनाया गया शिवलिंग भू-सम्पत्ति देता है।

जौ, गेहूँ, चावल–तीनों का आटा समान भाग मिला कर जो शिवलिंग बनाया जाता है, उसकी पूजा स्वास्थ्य, श्री और सन्तान देती है।

मिश्री से बनाये हुए शिवलिंग की पूजा रोग से छुटकारा देती है।

सोंठ, मिर्च, पीपल के चूर्ण में नमक मिलाकर जो शिवलिंग बनाया जाता है, उसका प्रयोग वशीकरण आदि अभिचार में किया जाता है।

भीगे तिल को पीस कर बनाया गया शिवलिंग अभिलाषा पूर्ति करता है।

यज्ञकुण्ड से ली गई भस्म से जो शिवलिंग बनता है उसका पूजन अभीष्ट देने वाला होता है।

किसी की प्रीति बढ़ाने के लिए गुड़ की डली से बना कर शिवलिंग का पूजन करना चाहिए।

सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए चीनी की चाशनी से बने शिवलिंग का पूजन होता है।

बांस के अंकुर को शिवलिंग के समान काटकर पूजा करने से वंश-वृद्धि होती है।

दही को कपड़े में बांधकर निचोड़ देने के पश्चात् उससे जो शिवलिंग बनता है उसका पूजन लक्ष्मी और सुख देने वाला होता है।

गुड़ में अन्न चिपकाकर शिवलिंग बनाकर पूजा करने से कृषि-उत्पादन अधिक होता है।

किसी भी फल को शिवलिंग के समान रखकर उसकी पूजा करने से फलवाटिका में अधिक फल आता है।

आंवले को पीसकर बनाया गया शिवलिंग मुक्ति प्रदाता होता है।

नवनीत को अथवा वृक्षों के पत्तों को पीसकर बनाया गया शिवलिंग स्त्री के लिए सौभाग्यदाता होता है।

दूर्वा को शिवलिंगाकार गूंथकर उसकी पूजा करने से अकाल-मृत्यु का भय दूर होता है।

कपूर से बने शिवलिंग का पूजन भक्ति और मुक्ति देता है।

लोहे से बने शिवलिंग का पूजन सिद्धि देता है।

मोती के शिवलिंग का पूजन स्त्री की भाग्य-वृद्धि करता है।

स्वर्ण निर्मित शिवलिंग समृद्धि का वर्धन करता है।

चांदी का शिवलिंग धन-धान्य बढ़ाता है।

पीतल का शिवलिंग दरिद्रता का निवारण करता है।

लहसनिया का शिवलिंग शत्रुओं का नाशक होता है, विजयदाता होता है।

इसी प्रकार स्फटिक तथा अन्य रत्नों का शिवलिंग मनुष्यों को अभीष्ट कामनाएँ प्रदान करता है।

पारद से बने शिवलिंग की शास्त्रों में बहुत प्रशंसा है। इसे ज्योतिर्लिंग से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसका पूजन सर्वकामप्रद, मोक्षप्रद, शिवस्वरूप बनाने वाला है। यह समस्त पापों का नाश करके जीवों को संसार के सम्पूर्ण सुख एवं मोक्ष देता है।

उपलिंग

देश में स्वयंभू लिंग बहुत हैं। स्वयंभू लिंग का अर्थ है, वह शिवलिंग जिसकी किसी ने स्थापना नहीं की है। जो किसी आराधक की उत्कृष्टतम तपस्या एवं श्रद्धा से स्वयं प्रकट हुआ है। ऐसे शिवलिंगों की संख्या करना सम्भव नहीं है। जगत ही लिंगमय है। स्वर्ग में, पाताल में और पृथ्वी पर भी ये दिव्यलिंग बहुत हैं, लेकिन पृथ्वी

पर ज्योतिर्लिंग केवल बारह हैं। उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। इन द्वादश ज्योतिर्लिगों के आठ उपलिंग माने जाते हैं। इनका वर्णन नीचे है। कहा जाता है कि ये ज्योतिर्लिंगों से ही प्रकट हुए हैं।

(१) मल्लिकार्जुन से प्रकट रुद्रेश्वर जो भृगुकच्छ (भड़ौच) में हैं।

(२) महाकाल से प्रकट दुग्धेश्वर जो नर्मदा-तट पर हैं।

(३) ओंकारेश्वर से प्रकट कर्दमेश जो बिन्दुसर पर सिद्धपुर में हैं।

(४) केदारेश्वर से प्रकट भूतेश्वर जो यमुना तट पर मथुरा में हैं।

(५) भीमशंकर से प्रकट भीमेश्वर सह्यगिरि पर।

(६) नागेश्वर से प्रकट भूतेश्वर मल्लिका सरस्वती के तट पर।

(७) रामेश्वर से प्रकट गुप्तेश्वर। इनके ठीक स्थान का निश्चय करना कठिन है, क्योंकि इस नाम के कई लिंग देश में हैं।

(८) घुश्मेश्वर से प्रकट व्याघ्रेश्वर। इनकी स्थिति के सम्बन्ध में भी गुप्तेश्वर जैसी ही अवस्था है।

●

नर्मदेश्वर लिंग

ओंकारेश्वर रोड से २० मील अथवा मध्य रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर खण्डवा से २१ मील पर वीर स्टेशन है, वहाँ से १५ मील दूर पुनासा गाँव तक पक्की सड़क है, आगे पाँच मील पैदल चलना पड़ता है। इस स्थान पर नर्मदा का सबसे बड़ा प्रपात है। लगभग ५० फीट की ऊँचाई से जल गिरता है। आस पास सघन वन है। प्रपात के नीचे जो कुण्ड है उसके आगे घावड़ी कुण्ड है। नर्मदेश्वर लिंग यहीं से निकाले जाते हैं। इसको बाणलिंग भी कहते हैं। यद्यपि नर्मदा से प्राप्त कहीं का भी लिंग नर्मदेश्वर है, परन्तु परम्परा इस कुण्ड से ही प्राप्त करने की प्रचलित है। इस बाणलिंग को लाकर पत्थर, सोने, चांदी, तांबे आदि किसी धातु की पीठिका (अर्घा) बना कर उसमें स्थापित करना चाहिए।

नर्मदेश्वर लिंग पूज्य है या नहीं, इसको जानने की एक पद्धति है। बहुत अच्छा कांटा होना चाहिए। शिव-लिंग को चावलों से तौल लीजिए। थोड़ी देर बाद उन्हीं चावलों से फिर उसी लिंग को तौलिए। यदि कुछ चावल लिंग के वजन से बढ़ जाते हैं तो यह लिंग गृहस्थ को ऐश्वर्य देने वाला है, उसके लिए पूज्य है। यदि कुछ चावल घटते हैं तो यह सांसारिक विपत्तियों से पृथक् करके वैराग्य देने वाला लिंग है इसका पूजन विरक्त को करना

चाहिए। किन्तु यदि शिवलिंग चावल के समान ही रहता है तो थोड़ी देर बाद फिर तौलना चाहिए। यदि तीसरी बार भी वह समान ही रहता है तो वह लिंग पूजनीय नहीं है। अतः उसे जल में विसर्जित करके दूसरे लिंग का ग्रहण करना चाहिए।

खुरदरा, चिपटा, केवल एक ओर गोल, दूसरी ओर चिपटा, जिसका सिर खुरदरा हो, जिसमें कहीं छेद हो, जिसका सिर बहुत नुकीला हो या टेढ़ा हो, ऐसा लिंग पूजा के लिए नहीं लिया जाना चाहिए।

बहुत बड़ा, बहुत पतला, बहुत छोटा, जिस पर धारियाँ पड़ी हों, ऐसा लिंग भी पूजा के उपयुक्त नहीं होता।

अत्यन्त काला भौंरे के समान शिवलिंग ही पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। बादल के समान श्याम रंग का, शहद के समान वर्ण का अथवा श्वेत रंग का भी पूजा के उपयुक्त है। कमलगट्टे के बराबर शिवलिंग अथवा मुर्गी के अंडे के बराबर या जामुन के फल के बराबर गृहस्थ के घर में रहकर पूजा के लिए श्रेष्ठ माना गया है। पीले रंग का, श्वेत, नीले, संतरे के समान रंग वाला—यह भी श्रेष्ठ ही माना जाता है, किन्तु जिसमें अनेक रंग हों, उसे नहीं लिया जाना चाहिए।

पार्थिव-पूजन

पार्थिव लिंग का अर्थ है मिट्टी से बनाया गया शिवलिंग। मनुष्य सब कहीं आराध्य मूर्ति को लिए नहीं फिर सकता। जिनको प्रतिदिन पूजा करनी है, वे प्रायः कहीं भी पार्थिव लिंग बनाकर पूजन करते हैं। वैसे भी पार्थिव पूजन शिव-पूजा में बहुत महत्व का माना जाता है। अनेक महापुरुषों के जीवन में प्रतिदिन पार्थिव पूजन का वर्णन मिलता है। पार्थिव पूजन भोग और मोक्ष दोनों का ही दाता है। यहाँ तक कि जहाँ स्थापित शिवलिंग हैं, वहाँ भी पार्थिव लिंग बनाकर पूजन किया जाता है और यह परम्परा ओंकारेश्वर के अमलेश्वर मन्दिर में बड़े विस्तार से देखी जा सकती है।

किसी शुद्ध स्थान से पार्थिव लिंग निर्माण के लिए मिट्टी ली जाती है। इस मिट्टी में कोई दूषित पदार्थ, कीड़ा, भस्म आदि नहीं होनी चाहिए। कंकड़ियां हों तो उन्हें निकाल देना चाहिए। साफ चिकनी मिट्टी पार्थिव लिंग के लिए उत्तम होती है। वैसे नियम यह है कि ब्राह्मण के लिए श्वेत, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए पीली और शूद्र के लिए काली मिट्टी शिवलिंग-निर्माण में सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु जहाँ पर जैसी मिट्टी प्राप्त हो, सभी उसका ग्रहण कर सकते हैं। पृथ्वी की ऊपरी तह थोड़ा हटाकर नीचे से मिट्टी ली जानी चाहिए।

जल में भिगो कर भली प्रकार सानकर-किसी एक ही हाथ से सान कर पार्थिव लिंग बनाया जाता है। यह लिंग-मूर्ति अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के ऊपरी पोर से चौड़ी और चार अंगुल से बड़ी नहीं होनी चाहिए। मिट्टी से ही अर्घा भी बनाया जाता है, जो नाप में शिवलिंग से दुगुना होना चाहिए। इसके नीचे का हिस्सा ऐसा हो कि वह पृथ्वी पर स्थिर रह सके। अर्घे के बीच में शिवलिंग की स्थापना के लिए थोड़ा गड्ढा करके उसमें लिंग की स्थापना की जाती है। एक छोटी सी मिट्टी की गोली बनाकर शिव-लिंग के ऊपर रख देते हैं। इसे वज्र कहते हैं।

शिवलिंग चार अंगुल ऊँचा, चिकना, वेदीयुक्त उत्तम माना गया है। उससे आधा मध्यम और उससे आधा भी तृतीय श्रेणी का माना गया है। जो लोग यज्ञोपवीतधारी हैं उन्हें इस लिंग का पूजन वेद-मन्त्रों से करना चाहिए और दूसरों को षडक्षर मन्त्र से।

यदि कहीं चिकनी मिट्टी नहीं मिल सकती हो तो बालू मिली मिट्टी या बालू से भी पार्थिव लिंग का निर्माण और पीठ बना करके पूजन किया जा सकता है।

मिट्टी को सानते समय पंचाक्षर मन्त्र, हराय नमः अथवा महेश्वराय नमः—इस मन्त्र को प्रणव के साथ बोलना चाहिए। जो लोग एक ही हाथ से लिंग नहीं बना सकते वे दोनों हाथों से इसका निर्माण कर सकते हैं।

लिंग मूर्ति बना कर इसे जल से स्नान नहीं कराया जाता। स्नान, अर्घ्य, पाद्य का जल समीप में अलग डाला जाता है। दुग्ध और पंचामृत से स्नान करा सकते हैं। अपनी श्रद्धा और शक्ति के अनुसार पंचोपचार, षोडशोपचार अथवा महाराजोपचार से अर्चक जैसे सब देव-मूर्तियों का पूजन करते हैं, पार्थिव पूजन भी होता है। सुविधा के लिए यहाँ पंचोपचार और षोडशोपचार की सूची दी जा रही है।

पंचोपचार—(१) आवाहन, (२) आसन, (जोकि पुष्प से ही दिया जाता है) (३) भक्तिपूर्वक जो कुछ भी प्राप्त हो उसका निवेदन, (४) स्तुति, और (५) प्रणाम।

षोडशोपचार—(१) आवाहन, (२) आसन, (३) अर्घ्य, (४) पाद्य, (५) स्नान (पंचामृत स्नान भी), (६) वस्त्र (उपवस्त्र एवं यज्ञोपवीत भी), (७) चन्दन (अक्षत भी), (८) पुष्प (माल्य), (९) अंगराग या सुगन्धित द्रव्य, (१०) धूप, (११) दीपक (१२) नैवेद्य, (१३) आभरण, (१४) ताम्बूल, (१५) नाराजन (आरती), और (१६) प्रणाम (इस प्रणाम में पुष्पाञ्जलि परिक्रमा आदि भी सम्मिलित हैं।)

पूजन के उपरान्त इन पार्थिव लिंगों को किसी भी सरोवर या सरिता के जल में विसर्जित किया जाता है।

प्रतिदिन पूजन के लिए नवीन पार्थिव लिंग का निर्माण होता है।

सकाम व्यक्ति के लिए विभिन्न कामनाओं के अनुसार पार्थिव लिंगों की पूजा की संख्या पृथक्-पृथक् है। इनकी एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है—

धनार्थी ५००, पुत्रार्थी १,५००, वस्त्रार्थी ५०० मोक्षार्थी १,००,००,०००, भूकामी १,०००, दयार्थी ३०० तीर्थ-प्राप्त्यर्थी २,०००, वशीकरण के लिए ८००, मारण के लिए ७००, मोहनके लिए ८००, उच्चाटन एवं स्तम्भन के लिए १,०००, द्वेष-शमन के लिए ५००, बन्धन से छुटकारे के लिये १,५००, राज-भय से छुटकारा के लिए ५००, चोर-भय से छुटकारा के लिए २००, भूत-भय से छुटकारा के लिए ५००, दरिद्रता दूर करने के लिए ५,०००। समस्त कामनाओं की पूर्ति १०,००० पार्थिव लिंगों से हो जाती हैं।

लिंग पापहारी होता है। इसका अर्थ सिद्धि देने वाला है। यह सर्वकामप्रद होता है। दस सहस्र के पूजन से प्रबलतम राजभय दूर हो जाता है। इतने का पूजन कारागार से छुड़ा देता है। डाकिनी, शाकिनी, शिवगण आदि दिव्य प्रेतों के भय से ७,००० पार्थिव पूजन मुक्त कर देता है। बहुत प्रबल प्रारब्ध बाधा न देता हो तो ५५ सहस्र

पार्थिव लिंगों का पूजन अवश्य पुत्र देता है। दस सहस्र के पूजन से कन्या संतान होती है। एक कोटि लिंगों का पूजन करके पुरुष शिवस्वरूप हो जाता है।

शिव-तीर्थ

भगवान शिव की अष्ट तत्व मूर्ति हैं—१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. यजमान (आत्मा), ४. पृथ्वी, ५. जल, ६. वायु, ७. अग्नि और ८. आकाश। इनमें से सबकी मूर्तियाँ विभिन्न शिव-क्षेत्रों में हैं।

१. सूर्य तत्व मूर्ति दक्षिण भारत में तिरुवडमरुदूर स्टेशन से २ मील दूर सूर्यनार-कोइल में है। यहां के मन्दिर में प्रधान मूर्ति सूर्य की है।

२. प्रभास क्षेत्र का सोमनाथ मन्दिर चन्द्र रूप शिव मूर्ति है।

३. यजमान (आत्मा) मूर्ति अर्थात् आत्मतत्व लिंग चार रूपों में चार स्थानों पर माने जाते हैं क्योंकि अन्तःकरण के चार भेद होते हैं—(क) पशुपतिनाथ में श्रीपशुपति मूर्ति—यह नेपाल में काठमाण्डू से लगभग ६ मील दूर बागमती नदी के किनारे है। यह मूर्ति अष्टमुख लिंग विग्रह है जिसके ऊपर स्वर्ण निर्मित पंचमुख लिंग लगा

रहता है। (ख) दक्षिण से कर्नाटक प्रदेश में समुद्र तीर पर गोकर्ण क्षेत्र प्रसिद्ध है। यह गोकर्ण आत्मतत्व लिंग माना जाता है। (ग) उत्तर प्रदेश में गोला गोकर्णनाथ में आत्म-तत्व लिंग की दूसरी मूर्ति है। (घ) शृंगेश्वरनाथ, बिहार में चतुर्थ मूर्ति आत्म-तत्व लिंग की है।

४. एकाम्रेश्वर—शिवकांची का प्रसिद्ध मन्दिर क्षिति तत्व लिंग है।

५. श्रीरंगम में रेलवे स्टेशन के पास जम्बुकेश्वर मन्दिर में जल तत्व लिंग है।

६. तिरुवन्नमलाई (अरुणाचल)—यह तेजो लिंग अथवा अग्नि तत्व लिंग माना जाता है।

७. श्रीकालहस्तीश्वर—यह तमिलनाडु में स्थित तीर्थ वायुतत्व लिंग का है।

८. चिदम्बरम्—यह श्रीनटराज के पार्श्व में स्वर्ण माला से परिवेष्ठित आकाश तत्व लिंग माना जाता है।

कवेल्यशैल पर भगवान शिव श्रीकण्ठ नाम से विराज-मान हैं। वे हिमालय पर्वत पर केदार नाम से तथा काशी पुरी में विश्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्री शैल पर्वत पर मल्लिकार्जुन, प्रयाग में नीलकण्ठेश, गया में रुद्र, कालंजर में नीलकण्ठेश्वर, द्राक्षाराम में भीमेश्वर तथा मायूरम् (मायावरम्) में वे अम्बिकेश्वर कहलाते हैं। वे ब्रह्मावर्त में

दिर्वालिंग के रूप में प्रभास में शशिभूषण, श्वेतहास्तिपुर में वृषध्वज, गोकर्ण में गोकर्णेश्वर, सोमनाथ में सोमेश्वर, श्रीरूप में त्यागराज तथा पाक्षतीर्थ में वेदपुरीश्वर के नाम से विख्यात हैं। भगवान शिव भीमाराम में भीमेश्वर, मंथन में कालिकेश्वर, मथुरा में चोक्कानाथ, मानस में माधवेश्वर, श्रीवान्छक में चम्पकेश्वर, पञ्चवटी में वटेश्वर, राजारण्य में वैद्यनाथ तथा तीर्थाञ्चल में तीर्थकेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं। वे कुम्भकोणम् में कुम्भेश, लेपाक्षी में पापनाशन, कण्वपुरी में कण्वेश तथा मध्य में मध्यार्जुनेश्वर नाम से प्रतिष्ठित हैं। हरिहरपुर में शंकरनारायणेश्वर, विरञ्चिपुरी में मार्गेश, पंचनद में गिरीश्वर, पम्पापुरी में विरूपाक्ष, सोमगिरि पर मल्लिकार्जुन, त्रिमकूट में अगस्त्येश्वर तथा सुब्रह्मण्य में अहिपेश्वर नाम से समादृत होते हैं। महाबल पर्वत पर महाबलेश्वर नाम से दक्षिणावर्त में साक्षात् सूर्य के द्वारा पूजित अर्केश्वर, वेदारण्येश्वर, सोमपुरी में सोमेश्वर, उज्जैन में रामलिंगेश्वर, कश्मीर में विजयेश्वर, महानन्दिपुर में महानन्दिपुरेश्वर, कोटितीर्थ में कोटीश्वर, वृद्ध क्षेत्र में वृद्धाचलेश्वर तथा अति पवित्र ककुद् पर्वत पर वे गंगाधरेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान शिव चामराजनगर में चामराजेश्वर, नन्दि पर्वत पर नन्दीश्वर, बधिराचल में षण्डेश्वर, गरपुर में अधिपेश्वर, नानानन्द पर्वत पर सोमेश्वर, नल्लूर में निर्मलेश्वर, नीडा-

नाथपुर में नीडानाथेश्वर, एकान्त में रामलिंगेश्वर त नीनाग में कुण्डलीश्वर रूप में विराजते हैं। वे श्रीकन्या त्रिभंगीश्वर, उत्संग में राधवेश्वर, मत्स्य-तीर्थ में तीर्थेश्व त्रिकूट पर्वत पर ताण्डवेश्वर, प्रसन्नपुरी में मार्गसहायेश्व गंडकी में शिवनाम, श्रीपति में श्रीपतीश्वर, धर्मपुरी धर्मलिंग, कान्यकुब्ज में कलाधर, वाणिग्राम में विरंचीश्व तथा नेपाल में नकुलेश्वर कहे जाते हैं। जगन्नाथपुरी मार्कण्डेश्वर, नर्मदा तट पर स्वयम्भू, धर्मस्थल में मन नाथ, त्रिरूपक में व्यासेश्वर, स्वर्णावती में कलिंगेश्व निर्मले में पन्नगेश्वर, पुण्डरीक में जैमनीश्वर, अयोध्या मधुरेश्वर, सिद्धवटी में सिद्धेश्वर, श्रीकूर्माचल पर त्रिपु न्तक, मणिकुण्डल तीर्थ में मणि मुक्तानन्दीश्वर, वाटा में वृत्तिवासेश्वर, त्रिवेणी तट पर संगमेश्वर, स्तनि तीर्थ में मल्लेश्वर तथा इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुनेश्वर में विराजमान हैं। वे शेषाचल पर कपिलेश्वर, पुण्यगि पर पुण्यगिरीश्वर, चित्रकूट में भुवनेश्वर, उज्जैन कालिकेश्वर (महाकाल), ज्वालामुखी में शूलटंक, मंग में संगमेश्वर, तज्जापुरी में (तंजौर) में बृहती (दी) श्व पुष्कर में रामेश्वर, लंका में मत्स्येश्वर, गन्धमादन कूर्मेश्वर, विन्ध्य पर्वत पर वराहेश्वर और अहोबलि नृसिंह रूप से प्रकट हैं। प्रभु विश्वनाथ कुरुक्षेत्र में वा नेश्वर रूप में, कपिला तीर्थ में परशुरामेश्वर, सेतुबन्ध

रामेश्वर, साकेत में बलरामेश्वर, वारणावत में बौद्धेश्वर, तत्वक्षेत्र में कल्कीश्वर तथा महेन्द्राचल पर कृष्णेश्वर—रूप में व्यक्त हैं।

(ललितागम, ज्ञानपाद शिव-लिंगप्रादुर्भाव-पटल)

शिव निर्माल्य

भगवान् शंकर पर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण किया जाय या नहीं—इस सम्बन्ध में बहुत मति-भ्रम है। शिव के प्रसाद में चण्ड का भाग होता है। भगवान् महेश्वर के मुख-तेज से प्रकट चण्डेश्वर उनके प्रेतगणों में प्रधान हैं, इसलिए उनका प्रसाद ग्राह्य नहीं होता—यह बाठ ठीक है। किन्तु कौन-सा प्रसाद चण्डका भाग है और कौन-सा उनका भाग नहीं है—यह बात विचार कर लेनी चाहिए; क्योंकि प्रसाद के त्याग में भी बहुत बड़ा दोष शास्त्रों में वर्णित है।

(१) जहाँ कहीं भगवान् शंकर की साकार मूर्ति (हाथ-पैर वाली) बनी हो, उसका प्रसाद ग्रहण किया ही जाना चाहिए। दूसरे देवताओं के प्रसाद के समान वह पवित्र है।

(२) किसी भी धातु से बने हुए शिव-लिंग के ऊपर चढ़ा हुआ प्रसाद सर्वथा पवित्र है, वह ग्रहण करने योग्य है। यदि किसी दूसरी वस्तु से बना शिव-लिंग हो और उसके ऊपर धातु का कलेवर चढ़ा हो, जैसा कि अनेक

स्थानों में है, तो उस पर चढ़ा हुआ प्रसाद भी पवित्र होता है।

(३) जो प्रसाद शिव-लिंग के ऊपर नहीं चढ़ा है, सामने रखकर भोग लगाया गया है, वह प्रसाद पवित्र है, उसे ग्रहण किया जाना चाहिए।[1]

(४) द्वादश ज्योतिर्लिंग, अष्ट उपलिंग तत्वलिंग, स्वयंभू लिंग (जो स्वयं प्रकट हुए हैं), किसी साधु महापुरुष के द्वारा स्थापित लिंग और नर्मदा के जल में से प्राप्त हुआ बाणलिंग (नर्मदेश्वर)—इनके ऊपर चढ़ा हुआ प्रसाद भी पवित्र होता है इसमें चण्डका कोई भाग नहीं होता, इसलिए इसके त्याग में ही दोष है।

(५) अब ऊपर के सब प्रकार के शिवलिंगों को छोड़ दें तो साधारण पत्थर से गढ़े हुए लिंग, नर्मदा के अतिरिक्त किसी दूसरी नदी में से प्राप्त लिंग या मूर्ति अथवा केशर के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों से बने मिट्टी, चीनी आदि के शिवलिंगों पर जो प्रसाद चढ़ाया गया हो, उसे किसी को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसे मन से चण्डको अर्पित करके किसी जलाशय में डाल दिया जाना चाहिए।

१. जो पदार्थ उन शिवलिंगों के ठीक ऊपर रख दिया गया है जिनका प्रसाद ग्रहण करना यहाँ वर्जित बतलाया गया है, केवल प्रसाद का उतना ही अंश त्याज्य है। किसी पत्ते पर अथवा वर्तन में मूर्ति से थोड़ा दूर रखकर जो भोग लगाया जाता है वह किसी भी शिव-लिंग को लगाया हुआ प्रसाद ग्रहण करने योग्य है।

(६) केशर-चन्दन मिला करके जो लिंगमूर्ति बनती है, उस पर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

(७) यदि शिवलिंग गण्डकी नदी में पाया गया हो अथवा शिवलिंग के समीप शालिग्राम भी विराजते हों तो शिवलिंग पर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण करने योग्य है।

(८) किसी भी शिवलिंग पर चढ़ा हुआ प्रसाद यदि शालिग्राम जी को स्पर्श करा दिया जाता है तो वह ग्रहण करने योग्य है।[1]

---

१. भगवान शंकर की लिंग-मूर्ति पर चढ़ाया हुआ प्रसाद, चाहे वह किसी भी लिंग पर चढ़ाया हो, शालिग्राम जी को अर्पित किया जा सकता है; क्योंकि भगवान् विष्णु परम शैव हैं और वैसे ही शिव का प्रसाद ग्रहण करते हैं जैसे हनुमान जी श्री रघुनाथ जी का प्रसाद ग्रहण करते हैं। अतएव शिव-लिंग पर चढ़ा हुआ प्रसाद शालिग्राम जी को अर्पित करके ग्रहण करने योग्य हो जाता है क्योंकि फिर वह भगवान् विष्णु का प्रसाद होता है।

शिव-तत्व

समष्टि में तीन तत्व हैं—अजड़ जीव, जड़ प्रकृति और इन दोनों का नियन्ता। क्रम से इनको पशु, पाश और पशुपति कहते हैं। क्षर प्रकृति पाश, अक्षर जीव पशु और क्षराक्षर से परे पुरुषोत्तम पशुपति के इन्हीं तीनों तत्वों को जानना तत्वज्ञान है।

तत्वज्ञान से पाशस्वरूप प्रकृति का क्षरण हो जाता है, इसलिए पाश को क्षर कहते हैं। पाश के क्षरण हो जाने पर जो अक्षर पशु जीव है वह पशुत्व से विमुक्त होकर क्षराक्षर से परे पुरुषोत्तम पशुपति को प्राप्त कर लेता है। क्षर प्रकृति और अक्षर पुरुष—जो दोनों को प्रेरणा देता है, दोनों का संचालन करता है वह इन दोनों से परे पुरुषोत्तम परम परमेश्वर शिव हैं।

प्रकृति को ही माया कहते हैं और इस माया से आवृत पाश से आवद्ध जीव पशु है।

क्षर और अक्षर का सम्बन्ध अनादि है। यह सम्बन्ध अज्ञानमूलक कर्मजन्य है। माया शिव की शक्ति है। उन

पशुपति की प्रकृति है। चिद् रूप जीव उससे आच्छादित है। चित् स्वरूप का आच्छादक यह तम स्वयं कल्पित है। तम से रहित शुद्ध स्वरूप स्वयं शिव हैं।

कला, विद्या, राग, काल और नियति—ये कलाएँ हैं। इनका भोक्ता पुरुष है। कर्म पुण्यात्मक और पापात्मक हैं। पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख होता है। अविद्या के कारण जीव में उत्पन्न यह कर्म का मल अनादि है। भोग के अन्त तक यह मल अज्ञान से आत्मा का आश्रय करता है। भोग कर्मनाश के लिए है। प्रकृति जीवभोग्या है। बाह्य इन्द्रियां और अन्तःकरण तथा देह भोग के साधन हैं। भक्ति पूर्वक शिव का प्रसाद प्राप्त होने पर पाप का क्षय हो जाता है। क्षीण-मल-पुरुष शिव के समान हो जाता है।

पुरुष को ज्ञान देने वाली शक्ति विद्या कही जाती है और क्रियाभिव्यंजक शक्ति का नाम कला है। काल क्रीड़ा का अवच्छेदक भी है और नियन्ता भी है। क्रिया और काल दोनों ही अव्यक्त कारणरूपा माया के स्वरूप हैं और यह माया त्रिगुणात्मिका है।

अव्यक्त कारणात्मिका प्रकृति अर्थात् शिव की शक्ति के अनभिव्यक्त स्वरूप का व्यक्त रूप होता है। सुख, दुःख और मोह—इन तीनों प्रकारों से त्रिगुणात्मक अव्यक्त को

जीव भोगता है। प्रकृति के तीन गुण हैं—सत्व, रज औ
तम। ये तीनों तिल में तेल के समान प्रकृति में सूक्ष्म रू
से व्याप्त रहते हैं। इनमें से सुख सत्व गुण से, दुःख रजो
गुण से और मोह तमोगुण से होता है। इन गुणों से छु
कारा पाने के लिए जीव को सदाशिव की शरण ले
चाहिए।

पंचवक्र, दशभुज, पंचदश नयन, चन्द्रमौलि भगवा
शिव का व्यक्त सगुण साकार स्वरूप है। इस रूप से प
बिन्दु है। बिन्दु से परे अर्धबिन्दु है। उससे परे नाद अर्था
अर्धचन्द्र है। अर्धचन्द्र से परे सुषुम्नेश ज्योति स्वरूप शि
हैं। उससे परे ब्रह्मरन्ध्रेश्वर हैं। उससे भी परे शक्ति
और शक्ति से भी परे शिव-तत्व है।

शिव-तत्व भी केवल अनुभवैकगम्य बुद्धि से परे है
मन और इन्द्रिय किसी की भी वहाँ गति नहीं है। इस
परे परमकारण और स्वयं में निष्कारण जो अद्व
निरंजन, निर्विकार सदाशिव हैं वे मन-वाणी-बुद्धि कि
में आते नहीं। वे अद्वितीय अचिन्त्य हैं। उनमें व्यक्
अव्यक्त की कल्पना ही नहीं है।

(शिव पुरा

शिव की विभिन्न मूर्तियाँ

भगवान शंकर की पंचमूर्तियाँ एवं उनके पंचमुख शास्त्र-प्रसिद्ध हैं—

१. ईशान—क्षेत्रज्ञ, पराब्रह्मात्मक, भोक्ता, श्रोत्र-वाक् इन्द्रियात्मक हैं। यह शब्दाधिष्ठाता हैं।

२. तत्पुरुष—प्रकृति रूपा अधिकरणात्मक त्वक एवं पाणि क्रियात्मक हैं। यह स्पर्श का अधिष्ठाता हैं।

३. अघोर—यह बुद्धि, महत्तत्वस्वरूप, चक्षु-पादात्मक हिरण्यगर्भ रूप तन्मात्रा का अधिष्ठाता हैं।

४. वामदेव—अहङ्कारात्मक जिह्वा उपस्थ इन्द्रियात्मक रस तन्मात्रा का अधिष्ठाता हैं।

५. सद्योजात—पंचतत्वात्मक विराट घ्राणेन्द्रिय और वायु तथा गन्ध तन्मात्रा का अधिष्ठाता हैं।

श्वेतलोहित कल्प में, जो कि सृष्टि का दसवां कल्प था, महेश्वर का प्रथमावतार सद्योजात हुआ। ब्रह्मा के ध्यान करने पर उनसे शिखायुक्त श्वेतलोहित कुमार के रूप में रुद्र प्रकट हुए। इन रुद्र के ध्यान करने से सुनन्दन,

विश्वनन्दन आदि कुमार उत्पन्न हुए। ये कुमार सद्योजात के शिष्य हो गये। सद्योजात ने ब्रह्मा को सृष्टि उत्पन्न करने का ज्ञान दिया।

बीसवाँ कल्प रक्तलोहित कल्प कहलाया। इसमें ब्रह्मा अरुण वर्ण थे। रक्त वस्त्र, रक्त नेत्र, रक्ताभरण भूषित, रक्त मालाम्बर धर रुद्र वामदेव नाम से ब्रह्मा से प्रकट हुए। इनके भी चार कुमार प्रकट हुए—विरज, विशोक, विवाद, विश्वभान। ये चारों वामदेव के शिष्य हो गये। वामदेव ने ही ब्रह्मा को सृष्टि का ज्ञान दिया।

इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा कल्प था। ब्रह्मा इस कल्प में पीतवर्ण, पीताम्बरधर थे। उनके ध्यान से पीताम्बरधारी प्रौढ़ावस्था का दीर्घभुजा जो पुरुष उत्पन्न हुआ वह तत्पुरुष रुद्र थे। इन तत्पुरुष के पार्श्व से पीतवस्त्रधारी अनेक कुमार उत्पन्न हुए। ये सब योगमार्ग के प्रवर्तक हैं।

बाईसवाँ कल्प शिव कल्प कहा जाता है। इस कल्प में ब्रह्मा भी कृष्ण वर्ण थे। उनसे उन्हीं के वर्ण का वैसा ही वस्त्र, माला, उष्णीष, यज्ञोपवीत, मुकुट आदि धारण किये हुए जो तेजस्वी कुमार प्रकट हुआ उसे अघोर कहा जाता है। अघोर से कृष्ण वर्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्ण कण्ठ चार महात्मा प्रकट हुए। ये चारों ही योगी हुए और

इन्होंने योगमार्ग का प्रवर्तन किया। ब्रह्मा से प्रकट कृष्ण वर्ण कुमार अघोर कहा गया।

तेईसवाँ कल्प विश्व रूप कल्प था। इसमें ब्रह्मा से ईशान प्रकट हुए और विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुईं। ईशान से भी चार कुमार प्रकट हुए। ये चारों जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्डी कहे गये। ये योगमार्ग के उपासक हुए। भगवान शिव के ये पंच अवतार प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान श्वेत वाराह कल्प में भगवान शिव के जो युगावतार हुए उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

वाराह कल्प के प्रथम मन्वन्तर में तो नीललोहित रुद्र ब्रह्मा से प्रकट हुए—यह बात पहले आ चुकी है। दूसरे मन्वन्तर में शिव का श्वेत मुनि के रूप में प्राकट्य हुआ। तीसरे मन्वन्तर में द्वापर में दमन नाम से शिव अवतरित हुए। इस मन्वन्तर में भार्गव नाम के व्यास थे। दमन नामी रुद्र ने उनकी सहायता की।

प्रत्येक मन्वन्तर में ही व्यासों के नाम अलग-अलग हैं और रुद्र ने अवतार धारण करके उनकी सहायता की है—

चतुर्थ मन्वन्तर के द्वापर में अंगरा व्यास थे और सुहोत्र नाम से शिवावतार हुआ।

पंचम	,, ,,	सविता	,, ,,	कंक तापस	,, ,,
छठे	,, ,,	मृत्यु	,, ,,	लोकाक्षि	,, ,,
सातवें	,, ,,	शतक्रतु इन्द्र	,, ,,	जैगीषव्य	,, ,,
आठवें	,, ,,	वशिष्ठ	,, ,,	दधिवाहन	,, ,,
नौवें	,, ,,	सारस्वत	,, ,,	ऋषभ	,, ,,
दसवें	,, ,,	त्रिधाम	,, ,,	भृगुतुंग	,, ,,
ग्यारहवें	,, ,,	त्रिवृत	,, ,,	तप	,, ,,

यह अवतार हरिद्वार में हुआ था।

बारहवें मन्वन्तर के द्वापरमें शततेजा व्यास थे और अत्रि नाम से शिवावतार हुआ

तेरहवें	,,	धर्मनारायण	,,	बलि महामुनि	,,
चौदहवें	,,	रक्ष	,,	आंगिरस गौतम	,,
पन्द्रहवें	,,	त्र्ययारुणि	,,	वेदशिरा	,,
सोलहवें	,,	देवमुनि	,,	गोकर्ण	,,
सत्रहवें	,,	कृतंजय	,,	गुहावासी	,,
अठारहवें	,,	ऋतंजय	,,	शिखण्डी	,,
उन्नीसवें	,,	भरद्वाज	,,	जटीमाली	,,
बीसवें	,,	गौतम	,,	अट्टहास	,,
इक्कीसवें	,,	वाचःश्रवा	,,	दारुक	,,
बाईसवें	,,	शुष्मायण	,,	महामुनि	,,

(वाराणसी में अवतरि

तेईसवें मन्वन्तरके द्वापरमें तृणबिन्दुमुनि व्यास थे और श्वेतनाम से शिवावतार हुआ।
(कालिंजर में अवतरित)

चौबीसवें ,, यक्ष ,, शूली नाम से शिवावतार हुआ।
(नैमिषारण्य में)

पच्चीसवें ,, शक्ति ,, दण्डीमुण्डीश्वर ,, ।

छब्बीसवें ,, योगी पराशर ,, सहिष्णु ,, ।
(भद्रवटपुर में अवतरित)

सत्ताईसवें ,, जातुकर्ण ,, सोमशर्मा नाम से शिवावतार हुआ
(प्रभास में अवतरित)

वर्तमान अट्ठाईसवें मन्वन्तर के द्वापर में कृष्णद्वैपायन नाम के व्यास हुए हैं और योगात्मा ब्रह्मचारी इस मन्वन्तर के रुद्र का नाम है।

इनमें से प्रत्येक समय रुद्र से चार-चार कुमार प्रकट हुए हैं। सबमें रुद्र ने व्यास की सहायता की है, योगमार्ग का प्रचार और रक्षण किया है। इन सब मन्वन्तरों में रुद्र से जो उनके कुमार प्रकट हुए उन्होंने रुद्र का ही शिष्यत्व ग्रहण किया है और सब पाशुपत व्रतधारी थे। भस्म, रुद्राक्ष, त्रिपुण्ड धारण करके शिवलिंगार्चन करते थे।

पहले जो पाँच अवतार कहे गये हैं ये शिव के पांच स्वरूप हैं। इनमें से ईशान सूर्य के अधिष्ठाता देवता हैं।

तत्पुरुष त्रिगुणों के, अघोर बुद्धि के, वामदेव अहंकार के और सद्योजात प्रकृति के अधिष्ठाता हैं।

भगवान शिव की आराधना के लिए अष्ट मूर्तियां मानी गयी हैं। इनके नाम हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये मूर्तियाँ भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ सूर्य और चन्द्र की अधिष्ठाता हैं।

भगवान शंकर के भी दस अवतार माने जाते हैं। शक्ति की आराधना में जो दस महाविद्याएं मानी जाती हैं उनके साथ शिव के ये दस पुरुष स्वरूप उपास्य होते हैं। इनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

(१) महाकाल—इनकी शक्ति महाकाली हैं। ये भुक्ति-मुक्ति दायिनी हैं।
(२) तारक—इनकी शक्ति तारा हैं। ये भी आराधक को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करती हैं।
(३) भुवनेश—इनकी शक्ति भुवनेश्वरी हैं।
(४) विद्येश—इनकी शक्ति विद्याषोडशी हैं।
(५) भैरव—इनकी शक्ति भैरवी हैं।
(६) छिन्नमस्त—इनकी शक्ति छिन्नमस्ता हैं।
(७) धूमवान—इनकी शक्ति धूमवती हैं।

(८) बगलामुख—इनकी शक्ति बगलामुखी हैं।
(९) मातंग—इनकी शक्ति मातङ्गी हैं।
(१०) कमलेश—इनकी शक्ति कमला हैं।

(शिव पुराण)

१. स्थाणु—भगवान शिव ने सती का ध्यान करके अनेक नीललोहित रुद्र उत्पन्न किये। वे सब त्रिनेत्र, दीर्घ-ह्रस्व, प्रलम्ब या वामन, हिरण्यकेश, नित्य बुद्ध, निर्मल, वीतराग थे। ब्रह्मा ने इन सबकी स्तुति की।

सृष्टिकर्ता ने शिव से कहा—'आपको मेरा प्रणाम। आप प्रजा-सृजन योग्य नहीं हैं। आपने इन रुद्रों का ऐसा सृजन किया है जिनकी कभी मृत्यु नहीं होगी। अतः मेरी प्रार्थना है कि यदि सृजन ही करना है तो ऐसा सृजन कीजिए जिनकी मृत्यु भी होती हो।'

शिव—'मैं ऐसा नहीं कर सकता। ऐसो प्रजा तुम्हीं बनाओ।' ऐसा कहकर वे सृजन-निवृत्त हो गये। इसी से निष्क्रिय स्थित शिव का नाम स्थाणु पड़ा। सृष्टि-विमुख होने के कारण उन्हें वामदेव कहा जाता है।

२. तत्पुरुष—इकतीसवें कल्प का नाम पीतवासा कल्प था। पुत्र की कामना से तप करते हुए ब्रह्मा से एक पीतवस्त्रधारी तेजस्वी कुमार प्रादुर्भूत हुआ। उसने पीले

पुष्पों की माला धारण कर रखी थी। उसकी पगड़ी भी पीली ही थी। सोने का यज्ञोपवीत उसने धारण कर रखा था। ब्रह्मा ने उस महेश्वर की स्तुति की। उसी समय महेश्वर के मुख से च्युत माहेश्वरी गौ को देखा। इस गौ के चार पैर, चार मुख, चार हाथ, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींग, चार दाढ़ें थीं। यह बत्तीस गुणों से युक्त सर्वतोमुखी ईश्वरी ब्रह्मा आदि देवताओं से स्तुत हुई। इसी कारण महेश्वर के इस स्वरूप को तत्पुरुष कहते हैं।

३. अघोर—असित कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड एकावर्ण में निमग्न हो गया था। इस कल्प में ब्रह्मा जी का रंग काला था। तपस्या करते-करते वे कृष्ण वर्ण हो गये थे। उनसे जो महातेजा कुमार प्रकट हुआ वह काला उष्णीश, काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए, काला अंगराग लगाये कृष्ण वर्ण था। ब्रह्मा ने जब उनकी स्तुति की तो वे रुद्र बोले—'मैं इसी रूप से सबका संहार करता हूँ और आराधक के सभी पापों का नाश करता हूँ।' शिव के इस स्वरूप को अघोर कहा जाता है क्योंकि समस्त सृष्टि उन्हीं का स्वरूप है, सृष्टि में उनके लिए कुछ भी घोर नहीं है।

४. ईशान—विश्वरूप कल्प में पुत्रार्थ तपस्या करते हुए ब्रह्मा के ध्यान से महानादा विश्वरूपा सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। इनके साथ ही शुद्ध स्फटिक के समान

सर्वाभरण-भूषित त्रिनेत्र ईशान प्रकट हुए। ब्रह्मा ने इनकी स्तुति की। पूर्ववर्णिता गौ के समान थे, सरस्वती भी चतुष्पादा, चतुर्मुखा, चतुःशृंगा, चतुःनेत्रा थीं। ब्रह्मा ने ईशान से कहा—'माण्डव्य ग वाले! तुम मेरे तप से उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे पुत्र हो।' शिव ने ब्रह्मा को बतलाया—'यह विश्वरूपा महेश्वरी आपके लिए प्रकट हुई हैं। ये आपकी शक्ति हैं।' (लिंगपुराण)

५. सद्योजात—ये वर्तमान कल्प के स्वयं नील-लोहित रुद्र हैं।

प्रलयंकर-शिव-आशुतोष

सदा ही नव-निर्माण विनाश की अपेक्षा करता है। बिना जीर्ण-जर्जर को विनष्ट किए नव-निर्माण की नींव नहीं डाली जा सकती।

जगत की सृष्टि, स्थिति, प्रलय के लिए परम तत्व ही तीन रूपों में प्रकट होता है। इसमें तमोगुण को अधिकृत करके जो रूप प्रकट हुआ, उसी को रुद्र कहते हैं। यह रूप बराबर सृष्टि में व्यवस्था बनाने के लिए विनाश का अधिष्ठाता है।

प्रलय चार प्रकार की कही जाती है—नित्य, नैमित्तिक, महा और आत्यन्तिक ।

नित्य प्रलय—यह प्रलय न हो तो कोई प्राणी-पदार्थ, जीवित नहीं रहेगा । हमारे-आपके शरीर में और संसार में भी एक-एक अंग प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है और नवीन बन रहा है । पहले पुराने को नष्ट होना पड़ता है, तब नवीन के लिए स्थान प्राप्त होता है । यदि निर्माण के आगे यह विनाश का देवता न चले, शिशु का शरीर भी बढ़ेगा ? इसलिए रुद्र का नित्य संहार सृष्टि के लिये आवश्यक है—यह आप समझ सकते हैं ।

नैमित्तिक प्रलय—जब किसी भी निमित्त से बहुत संहार होता है, उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । यह संहार भूकम्प, से ज्वालामुखी से, बाढ़ से, या किसी भी कारण से पृथ्वी के एक प्रदेश में हो सकता है, पृथ्वी के केन्द्र-च्युति से सम्पूर्ण पृथ्वी में हो सकता है, किन्हीं ग्रहों के परस्पर टकराने से दो, चार, दस ग्रहों-उपग्रहों के विनाश में भी हो सकता है । नैमित्तिक प्रलय निमित्त के अनुसार छोटी या बड़ी होगी । यह भी अन्ततः निर्माण के लिए ही भूमि प्रस्तुत करती है । आज विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है कि आदि में समस्त ब्रह्माण्ड एक ही पिण्ड था, किसी

विस्फोट से ही उसके टुकड़े बिखरे और इसी से काल पाकर पृथ्वी में प्राणियों की सृष्टि हुई। इस प्रकार प्रलयंकर का यह रूप भी सृष्टि के लिए भूमि ही प्रस्तुत करता है।

महाप्रलय—यह हमारे आपके लिए अत्यन्त अकल्पनीय है। विज्ञान के लिए इसका गणित कर पाना कठिन है क्योंकि अभी तो आकाश में दीखने वाले अनन्त नीहारिका मण्डलों का भी पता नहीं लगा है। अपने दीखने वाले देवयानी नीहारिका मण्डल (जो रात में आकाश में आकाश-गंगा के रूप में दीखता है) के ही कई तारक ऐसे हैं जिनका प्रकाश सृष्टि के लगभग पौने दो अरब वर्ष बीत जाने पर भी अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुँचा है। ऐसी अवस्था में इन अनन्त तारों का आदि-अन्त गणित कर लेना सम्भव नहीं है और महाप्रलय इन सबकी समाप्ति पर होती है।

महाप्रलय का अर्थ है समस्त ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, तारकों में जो पृथ्वी पड़ती है, उसका रस तत्व में लीन होकर, रस का अग्नि में, अग्नि का सूक्ष्मतम गति तत्व में, गति का शब्द की तन्मात्रा में और उसका अचिन्त्य प्रकृति में लीन हो जाना है। यह अवस्था एक बार ब्रह्माण्ड की आती है। इसकी काल-गणना हिन्दू शास्त्रों में है। ४,३२,००,००,००० वर्ष की एक चतुर्युगी होती है। इस प्रकार की एक हजार

चतुर्युगी ब्रह्मा का एक दिन है। ऐसे तीस दिनों का एक मास और बारह मास का वर्ष। अपने वर्ष से ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की है। ब्रह्मा के मरने पर महाप्रलय होती है। ब्रह्मा के एक दिन के अन्त में केवल नैमित्तिक प्रलय होती है।

महाप्रलय भी गतिखिन्न, श्रमश्रान्त, जर्जर, बूढ़े ब्रह्माण्ड को विराम देकर नवीन बनाने के लिए है। प्रलयंकर का प्रचण्ड ताण्डव इसे उपस्थित करता है और इसलिए उपस्थित करता है पुनः नूतन ब्रह्माण्ड का सृजन हो सके।

इस महाप्रलय के कर्ता को ही हिन्दू-शास्त्र प्रलयंकर कहते हैं। यह प्रलयंकर सृष्टि के लिए शान्त साम्यावस्था प्रदान करने वाले परम शिव हैं।

आत्यन्तिक प्रलय—यह केवल वैयक्तिक रूप में होती है। इसमें समूह साथी नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि जीव का आवागमन से, जन्म-मरण से सदा के लिए मुक्ति। ऐसी प्रलय जिसमें पुनः सृष्टि सम्भव नहीं है। इस मुक्ति का अधिदेवता इस मुक्ति के प्रदाता महेश्वर मंगलमय हैं, इसमें किसी को सन्देह के लिए स्वतः स्थान नहीं है।

आशुतोष—प्रलय के यह देवता शिव हैं और शिव ही नहीं हैं, आशुतोष हैं अर्थात इन्हें बहुत सरलता से शीघ्र सन्तुष्ट किया जा सकता है यदि आप में श्रद्धा है। आर्त का आह्वान आशुतोष सदा ही स्वीकार करते हैं।

केवल एक कठिनाई है। भगवान शिव नित्य अन्तर्मुख रहते हैं। उन्हें बाह्य प्रपंच प्रिय नहीं हैं। जैसे आत्माराम, आप्तकाम, महात्मा भी दृश्य जगत में कोई रुचि नहीं लेते, योगियों के परम गुरु की भी यही स्थिति है। अतः कोई कैसे प्रार्थना करता है, इसे शिव देखते नहीं हैं। प्रार्थना करने वाले को अपने हित-अहित का पूरा दायित्व समझना चाहिए, शिव का स्वभाव 'एवमस्तु' कह देना है, क्योंकि उन प्रलयंकर के लिए मृत्यु का भी कोई महत्व नहीं है, सृष्टि को वे स्वयं ही समाप्त करते हैं, अतः प्राणियों के शरीर के मरने-जीने में उन्हें कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता।

भगवान शंकर विभूति धारण करते हैं। समस्त सृष्टि को प्रलय करके भस्मीभूत ब्रह्माण्ड की विभूति अथवा यदि आप अपने अहंकार को भस्म करके ही विभूति उन्हें अर्पित कर सकें। यह विभूति अर्पण करने वाला धन्य हो जाता है और यही समझ सकता है, प्रलयंकर ही शिव हैं।

●

शिवपूजा की मुख्य बातें

किसी भी देव-पूजन में मनुष्य को स्नान आदि से शुद्ध तो होना ही पड़ता है, यदि सम्भव हो और कठिनाई न हो तो पूजा करने वाले को सिले हुए वस्त्र पहने हुए नहीं होना चाहिए। आसन शुद्ध होना चाहिए। पूजा के समय पूर्व या उत्तर मुख बैठ जाना चाहिए। संकल्प किया जाना चाहिए। शिव-पूजन के लिए निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए—

(१) भस्म, त्रिपुण्ड और रुद्राक्ष माला—ये शिव-पूजन के लिए विशेष सामग्री हैं जो पूजक के शरीर पर होनी चाहिए।

(२) भगवान शंकर की पूजा में तिल का प्रयोग नहीं होता और किसी भी चम्पा का पुष्प नहीं चढ़ाया जाता।

(३) शिव की पूजा में भी दूर्वा, तुलसी-दल चढ़ाया जाता है—इसमें सन्देह नहीं किया जाना चाहिए। अवश्य ही तुलसी की मंजरियों से पूजा अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है।

(४) शंकर जी के लिए विशेष पुष्प और पत्र में बिल्व-पत्र प्रधान है, किन्तु बिल्व-पत्र में चक्र और वज्र नहीं होना चाहिए। बिल्व-पत्र में कीड़ों के द्वारा बनाया हुआ जो सफेद चिन्ह होता है उसे चक्र कहते हैं और बिल्व-पत्र के डण्ठल की ओर जो थोड़ा सा मोटा भाग

होता है वह वज्र कहा जाता है। वह भाग तोड़ देना चाहिए। कीड़ों से खाया हुआ, कटा-फटा बिल्व-पत्र भी शिव-पूजा में योग्य नहीं होता। आक का फूल, धतूरे का फल भी शिव-पूजा की विशेष सामग्री है, किन्तु सर्वश्रेष्ठ पुष्प है नीलकमल का। उसके अभाव में कोई भी कमल का पुष्प भगवान शंकर को बहुत प्रिय है। कुमुदिनी-पुष्प अथवा कमलिनी-पुष्प का प्रयोग भी शिव-पूजा में होता है। बिल्व-पत्र चढ़ाते समय बिल्व-पत्र का चिकना भाग मूर्ति की ओर रहे—इस प्रकार चढ़ाया जाना चाहिए।

(५) बिल्व-पत्रों में तीन से लेकर ग्यारह दलों तक के बिल्व-पत्र प्राप्त होते हैं। ये जितने अधिक पत्रों के हों, उतना ही उत्तम माना जाता है, किन्तु यदि तीन में-से कोई दल टूट गया हो तो वह बिल्व-पत्र चढ़ाने योग्य नहीं है।

(६) तुलसी और बिल्व-पत्र सर्वदा शुद्ध माने जाते हैं। ये बासी नहीं होते। कुन्द, तमाल, आँवला, कमल-पुष्प, अगस्त्य-पुष्प—ये भी पहले दिन तोड़कर लाए हुए दूसरे दिन उपयोग में आते हैं। एक दिन में इनको बासी नहीं माना जाता।

(७) भगवान शंकर के पूजन के समय करताल नहीं बजाया जाता।

(८) शिव की परिक्रमा में सम्पूर्ण परिक्रमा नहीं की

जाती। जिधर से चढ़ा हुआ जल निकलता है उस नाली का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। वहाँ से प्रदक्षिणा उल्टी की जाती है।

भस्म-त्रिपुण्ड

किसी यज्ञकुण्ड से ली गयी भस्म का त्रिपुण्ड उत्तम माना जाता है। अग्निहोत्र से ली गयी भस्म भी श्रेष्ठ है। किसी भी साधु की धूनी से ली गई भस्म उपयोग में आ सकती है। यदि इनमें से कोई भी भस्म न मिल सके तो बिना ब्यायी गाय के सूखे हुए गोबर को जलाकर उसके भस्म को काम में लेना चाहिए।

पीपल की छाल को जलाकर उसके भस्म को गाय के दूध में सानकर पिण्डाकार बनाने के पश्चात् पुनः जलाया जाता है। फिर यह क्रिया कुछ अधिक बार दुहराई जाती है। इस प्रकार यह भस्म बहुत कोमल हो जाती है। नाथ-सम्प्रदाय में इस भस्म को शरीर में लगाने की बहुत प्रथा है।

पंचाक्षर जप महात्म्य

'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र प्रणव सहित षडक्षर मंत्र कहा जाता है और जब प्रणव नहीं गिना जाता, पंचाक्षर

कहा जाता है। इस मन्त्र के अधिकारी सभी हैं। शूद्र, स्त्री, अन्त्यज और यवन भी इसका जप कर सकते हैं। इसमें दीक्षा, हवन, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि आवश्यक नहीं हैं। यह मन्त्र सदा पवित्र है।

स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः।
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः।
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० ब्रह्मो० १, २०, २१)

मथुरा में यादव नरेश दशार्ह विद्वान्, सद्गुणी थे। काशिराज की पुत्री कलावती से इनका विवाह हुआ था, पर यह रानी पति की शय्या पर आना स्वीकार नहीं करती थी। एक दिन राजा ने उसे बलपूर्वक आलिंगन करने का प्रयत्न किया तो उसने कहा—'मेरा स्पर्श मत करिए।'

'तुम मेरी पत्नी हो।' यह कहकर राजा ने जैसे ही रानी का स्पर्श किया, वे उसे छोड़कर हट गये। उसका शरीर तप्त लोहे के समान संतप्त था। उससे राजा का अंग जलने लगा। उन्होंने रानी से पूछा—'तुम्हारी देह अग्नि के समान कैसे हो गयी ?'

रानी—'बचपन में मुनि दुर्वासा ने कृपा करके मुझे पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश किया है। उसके निरन्तर जप

से मैं सर्वथा निष्पाप हो गयी हूँ। किंचित् भी पापयुक्त पुरुष मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। विवाह तो मैंने पिता की इच्छानुसार किया, किन्तु अपनी युवावस्था के आरम्भ में आपने कुछ थोड़े से अपकर्म किये हैं। अतः उस दोष से रहित हुए बिना आपको मेरा स्पर्श असह्य रहेगा। आप पंचाक्षर जप तथा शिव की आराधना से शुद्ध हो जायं।'

'देवि ! तुम मुझे पंचाक्षर तथा शिवार्चन का उपदेश करो।' राजा ने कहा।

'आप मेरे पति हैं, मेरे पूज्य हैं, मैं आपको उपदेश नहीं कर सकती। आप अपने कुलगुरु गर्गाचार्य जी से उपदेश ग्रहण करें। वे भगवान शिव के साक्षात् शिष्य हैं।' रानी ने बतलाया।

राजा दशार्ह ने गर्ग से दीक्षा ली। यमुना तट पर लिंग स्थापित करके अर्चना में लग गये। इन्हीं दशार्ह के वंश में उत्पन्न होने के कारण भगवान वासुदेव को दाशार्ह कहा जाता है। (स्कन्द पुराण)

पञ्चाक्षर जप

ॐ नमः शिवाय—इस मन्त्र को प्रणव के साथ जब गिनते हैं, तब इसी को षडक्षर कहते हैं और बिना प्रणव के गिनने पर इसी को पञ्चाक्षर कहते हैं। इसका जप सभी

वर्णों के लोग सब समय कर सकते हैं। इसका पुरश्चरण ६० करोड़ जप का उत्तम, ३३ करोड़ का मध्यम और ६ करोड़ का सामान्य होता है। सभी पुरश्चरणों में जितना जप किया जाता है, उससे दशांश जप के साथ आहुति दी जाती है। आहुति का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन की दशांश संख्या के ब्राह्मणों को भोजन कराना पड़ता है। जो बहुत ही असमर्थ है अथवा गृहस्थ नहीं है, उनको इन सब हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदि के स्थान पर उतना ही जप कर लेना चाहिए।

शिव-पूजन में यदि आवाहन, आचमन, स्नान, भस्म-समर्पण आदि के मन्त्र न आते हों तो सब क्रियाएँ इस पञ्चाक्षर मन्त्र के जप से ही की जा सकती हैं।

●

महामृत्युञ्जय

ॐ हौ जूं सः
त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिबर्धनम्।
ॐ हौ जूं सः!

—यह सम्पूर्ण महा मृत्युञ्जय मन्त्र है। इसमें से केवल 'हौ जूं सः'—इस बीज मन्त्र को लघु मृत्युञ्जय कहा जाता है।

लघु मृत्युञ्जय का जप सभी कर सकते हैं और संकल्प-पूर्वक करने पर यह भी बहुत से कष्टों का निवारण कर देता है। शिव-मन्दिर में भगवान शिव के समीप बैठकर इसका नियमपूर्वक जप किया जाय तो तीन लाख जप कठिन बीमारी से भी बचाता देखा गया है।

सम्पूर्ण महामृत्युञ्जय का सविधि जप निश्चित मृत्यु को भी टालता है। यह बात प्रसिद्ध है और अनुभूत है, किन्तु महामृत्युञ्जय का जप केवल यज्ञोपवीतधारी वे द्विजाति कर सकते हैं जिनको शुद्ध उच्चारण का अभ्यास है। स्त्री इसके जप की अधिकारिणी नहीं है।

स्वयं न किया जा सकता हो तो इसका अनुष्ठान ब्राह्मण के द्वारा भी कराया जा सकता है। यदि ब्राह्मण नियमनिष्ठ हो, नित्य संध्या करता हो, तम्बाकू न खाता हो और ईमानदारी से पूरा जप करे तो ब्राह्मण के द्वारा अनुष्ठान से भी असाध्यतम रोग अच्छे हो जाते हैं—इसमें सन्देह का कारण नहीं है। महामृत्युञ्जय जप का पुरश्चरण ११ लाख का होता है। सुनिश्चित परिणाम की प्राप्ति के लिए एक पुरश्चरण पर्याप्त है। पुरश्चरण के अन्त में दशांश का हवन उसके दशांश का तर्पण, उसके दशांश का मार्जन और उसकी दशांश संख्या में ब्राह्मण-भोजन कराना अनुष्ठान का अङ्ग ही है।

महामृत्युञ्जय जपके अनेक चमत्कार देश में प्रसिद्ध

हैं। कठिनाई यह है कि अब ठीक और पूरा अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों का मिलना कठिन हो गया है। फिर भी संकटग्रस्त लोग इसका सहारा लेते हैं और कुछ लाभ प्राप्त करते ही हैं।

सोमवार और प्रदोष व्रत

भगवान शंकर की सन्तुष्टि के लिए सोमवार तथा प्रदोष का व्रत किया जाता है।

सोमवार व्रत वार-व्रत है, इसलिए सभी वार-व्रतों के इसमें भी दिन में केवल एक बार एक अन्न का भोजन किया जाता है। नमक का प्रयोग नहीं होना चाहिए। गोरस अर्थात् दूध, दही और मीठा भी उसके साथ ले सकते हैं, किन्तु दूसरी बार कुछ नहीं लिया जाता।

पहले दिन व्रत का संकल्प किया जाना चाहिए। रात्रि में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए। सवेरे स्नान करके विधिपूर्वक 'शिव की सन्तुष्टि के लिए मैं व्रत कर रहा हूँ।' यह संकल्प अवश्य करना चाहिए। भगवान शंकर के मन्दिर में अथवा घर पर शिव-पूजन, पंचाक्षर जप, भगवन्चर्चा, सम्भव हो तो भगवान शंकर के चरित्रों का पाठ इस दिन का मुख्य काम है।

किसी भी व्रत में आवश्यक होता है कि व्यक्ति बन सके तो मौन रहे। यह सम्भव न हो तो भी यह ध्यान

रखना चाहिए कि व्रतस्थ को रजस्वला स्त्री से, अन्त्य से, म्लेच्छ से, नास्तिक से और अपने आराध्य की निन्दा करने वाले से व्रत के दिन बात करना वर्जित है।

व्रतस्थ को अपना समय जहाँ तक हो सके, व्यावहारिक बातों में कम लगाना चाहिए। क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, पर-निन्दा—इनसे बचना चाहिए। तब व्रत का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।

प्रदोष-व्रत पंचागों में प्रायः लिखा होता है। यह कभी त्रयोदशी को और कभी द्वादशी को भी पड़ा करता है। जब भी सूर्यास्त के समय त्रयोदशी हो, वह दिन प्रदोष-व्रत का होता है, इसलिए व्रत करने वाले को पहले से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

प्रदोष-व्रत में दिन भर उपवास करके भगवान शंकर का पूजन किया जाता है। सायंकालीन पूजन के पश्चात् ही एकान्न अथवा फलाहार भोजन लिया जाता है। इस व्रत के भी शेष नियम सोमवार व्रत के समान ही हैं।

पंचमुख शिव

भगवान महेश्वर का परात्पर रूप वैसे पंचमुख ही है किन्तु कल्प-कल्प में ब्रह्माण्ड में भी वे किन्हीं निमित्तों से अपने इस रूप को पृथ्वी पर प्रकट करते हैं। इस प्रकार की कथा प्राप्त होती है।

एक दिन ब्रह्मलोक से ब्रह्माजी और कैलास से भगवान शंकर संयोगवश एक साथ ही बैकुण्ठ पहुँचे। लीलामय श्रीपति ने उस दिन कौतूहलवश अपनी किशोरावस्था प्रकट की। उन सौन्दर्य-सिन्धु की यह अवस्था देखकर ब्रह्मा और हर भी मोहित हो गये। एकटक उसे देखने लगे। एक तो सौन्दर्यघन स्वयं श्रीहरि, दूसरे उनकी किशोरावस्था। अब न ब्रह्मा जी को उस सौन्दर्य राशि को देखने से तृप्ति होती थी, न शिव को। अचानक शंकर जी ने सोचा, मुझ से तो अच्छे ये ब्रह्मा जी हैं, चतुर्भुज होने के कारण आठ नेत्रों से यह शोभा देख रहे हैं। मेरे पास तीन ही नेत्र हैं, किन्तु मैं इन्हीं पर सन्तोष क्यों करूँ? ब्रह्मा से एक अधिक मुख मैं क्यों न हो जाऊँ। संकल्प करते ही उनके पंचमुख हो गये। अब पन्द्रह नेत्रों से वह शोभा को देख रहे थे।

श्रीपति ने देखा, जब तक मैं किशोर रूप में रहूँगा, ये ऐसे ही मुग्ध खड़े रहेंगे। इनका सत्कार किया जाना चाहिये। इसलिये हरि ने अपना नित्य तरुण रूप धारण कर लिया। इससे दोनों चौंके। विष्णु भगवान ने हँसते हुए कहा—'अब श्री कैलासेश्वर का पंचमुख वेश भक्तों के लिये कल्याणप्रद होगा।'

भगवान शिव ने भक्तों की आराधना के लिये श्री हरि

का वचन सत्य करने के लिये अपना पंचमुख वेश नित्य कर दिया।

गुरु-तत्व-दक्षिणामूर्ति

गुरु शब्द का अर्थ है अन्धकार का नाशक अर्थात् अविद्यान्धकार को दूर करने वाला।

प्रारम्भ में ही यह कह देना है कि जैसे अनेक मन्दिरों में अनेक शिव-लिंग हैं छोटे-बड़े, श्वेत-कृष्ण, पतले-मोटे कई प्रकार के, किन्तु इनसे शिव अनेक नहीं हैं, एक ही हैं, इसी प्रकार सृष्टि के आदि से अब तक और आगे भी जो प्राणियों के विभिन्न मानव गुरु हैं, हुए हैं और होंगे, वस्तुतः वे जो विश्वैक गुरु हैं उन परम गुरु की मूर्तिमात्र हैं।

जीव अर्थात् व्यष्टि शरीर से परिच्छिन्न जीव किसी का गुरु हो नहीं सकता, क्योंकि जो स्वयं अविद्या के अंधकार में भटक रहा है, दूसरे को इस अंधकार से पार करने का पथ प्रदर्शित नहीं कर सकता। देहाभिमान के सर्वथा गलित होने, देहासक्ति का समुलोन्मूलन होने पर ही अविद्या की निवृत्ति मानी जाती है और जब देह की आसक्ति नहीं रही, देहगत चेतना अवरुद्ध किसे करेगी? तब देह की प्रतीति भले होती हो, उसके माध्यम से जो परम तत्व है,

वही प्रकाशित होता है और इसी रूप में कोई शरीर किसी पथ-भ्रान्त का पथदर्शक बन सकता है। इस प्रकार जितने भी गुरु हैं, वे यदि सचमुच गुरु हैं, गुरुत्व की योग्यता उनमें है तो वे व्यक्ति नहीं हैं, वे व्यापक ज्ञानस्वरूप, शिवतत्व के सचल स्वरूप हैं, उससे एकत्व प्राप्त कर चुके हैं। उनके माध्यम से जिज्ञासु के अधिकारानुरूप शिव का ही सन्देश प्रकट होता है।

परम गुरु के स्वरूप में शिव की साकार मूर्ति दक्षिणामूर्ति हैं। दक्षिण भारत के अधिकांश मन्दिरों में मन्दिर की भीतरी गर्भगृह-परिक्रमा में प्रायः मन्दिर की दक्षिणी दीवार में यह मूर्ति मिलती है। प्रायः सर्वत्र एक ही स्वरूप है— वट वृक्ष के नीचे सिद्धासन से भगवान शंकर ज्ञान-मुद्रा प्रदर्शित करते हुए मौन आसीन हैं। उनके आसन वेदिका के नीचे अज्ञान पुरुष दबा हुआ है। वेदिका के नीचे सनकादि कुमार ऋषियों के साथ मौन बैठे महेश्वर की ओर अपलक देख रहे हैं। यहाँ महेश्वर अपने मौन से ही अवाङ्‌ मनसगोचर तत्व के उपदेष्टा हैं। सुयोग्य शिष्य के अन्त करण संशय रहित हो गये हैं।

ये परम गुरु दक्षिणामूर्ति हमारे हृदय में ही विराज-मान हैं। उनके मौन उपदेश अविराम प्रवाहित हैं। अपनी इन्द्रियों और मन के चाञ्चल्य के कारण हम उन्हें श्रवण

नहीं कर पाते। यदि सचमुच आपको संसार में कोई गुरु प्राप्त नहीं होता, अपनी इन्द्रियों को और मन को शान्त होने दीजिए। अन्तःकरण में स्थित महेश्वर दक्षिणा मूर्ति का उपदेश आपको अवश्य पथ-प्रदर्शित करेगा।

आद्याचार्य

कलाओं के, विद्याओं के और पराविद्या आत्मज्ञान के भी परमाचार्य भगवान महेश्वर ही हैं। उन्हीं से समस्त कलाएं और विद्याएं प्रारम्भ हुई हैं।

संस्कृत का सामान्य विद्यार्थी भी जानता है कि समस्त मातृकाओं का अर्थात् अक्षरों का उद्भव भगवान शंकर के ताण्डव नृत्य करते समय उनके डमरू से हुआ। उनके हाथ में बजते हुए डमरू से प्रणव ध्वनि हुई। प्रणव से मातृकाएँ प्रकट हुईं। उनसे गायत्री मूर्तिमान हुई और वेदमाता गायत्री से वेद प्रकट हुए। डमरू-ध्वनि से उद्भूत सूत्र ही व्याकरण के मूल सूत्र हैं।

योग का उपदेश और समस्त तंत्रों का उपदेश भगवान शिव ने पूछने पर दक्षकन्या सती को अथवा पार्वती को किया था। इसी परम्परा से ये विद्याएँ मनुष्य तक पहुँची।

भगवान परशुराम, महर्षि विश्वामित्र और पाण्डव अर्जुन शिव के धनुर्वेद के साक्षात् शिष्य हैं। देवर्षि नारद

ने तथा गर्गाचार्य ने भी महादेव से ही ज्योतिर्विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था।

दक्ष के यज्ञ में शिवगणों ने देवताओं का अंग-भंग कर दिया था। तब उनके अंगों का पुनः सन्धान करते हुए महेश्वर ने आयुर्वेद को प्रकट किया। रसराज पारद तो शिव का वीर्य ही है। पार्वती शरीरोद्भव गन्धक से मिल कर वह अनेक औषधियों के निर्माण का आधार बनता है। इस प्रकार समस्त विद्याओं के आदिगुरु भगवान शंकर ही हैं।

तत्वज्ञान की अमृत परम्परा प्रारम्भ होने की अद्भुत कथा है। शुकदेव जी कैलाश पर निवास करने वाले सच-मुच ही शुक थे। गोलोक में श्री राधिका के लीला-शुक होने का आपको सौभाग्य प्राप्त था। प्रणय-रोष में श्रीराधा ने ही एक दिन इन्हें मर्त्य लोक में जाने का शाप दे दिया, अपने पिंजरे से निकाल दिया क्योंकि इन्होंने प्रणय-रोष में रूठी बैठी श्री राधा के सम्मुख श्री श्यामसुन्दर की प्रशंसा की थी। जब शुक ने प्रार्थना की, दयामयी ने आदेश दिया—'कैलाश पर चले जाओ। वहाँ भगवान भूतनाथ से अमर-कथा श्रवण करने के पश्चात् कृष्ण द्वैपायन की पत्नी से तुम्हारा प्राकट्य होगा। तुम्हें यहाँ की अखण्ड स्मृति रहेगी। माया तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।'

इस प्रकार गोलोक से श्री राधा के लीला-शुक कैलाश पर आकर भगवान शंकर के वट वृक्ष पर निवास करने लगे। भगवान शंकर पार्वती के आग्रह से उन्हें जीव को अमरत्व प्रदान करने वाली परा विद्या का उपदेश करने लगे। जब तक वे भक्ति तत्व का निरूपण करते रहे, श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कराने वाली दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रूपिणी प्रेमाभक्ति का वर्णन करते रहे, पार्वती ध्यानपूर्वक सुनती रहीं, लेकिन जब कैवल्य प्रदायिनी पराविद्या का अर्थात् निर्गुण तत्व का प्रतिपादन करने लगे, उमा को निद्रा आ गयी क्योंकि निर्गुण तत्व में रुचि-उत्पादन की स्वतः शक्ति नहीं है। पहले से जिसका विवेक जाग्रत हो, जिसमें अत्यन्त तीव्र वैराग्य हो, आत्मज्ञान का वही अधिकारी होता है। भगवती उमा स्वयं श्रद्धास्वरूपा, प्रेम-प्रदात्री हैं, उन्हें निर्गुण तत्व के प्रतिपादन में उदासीनता हो गयी—आश्चर्य की बात नहीं है।

कथा श्रवण के समय पर्वताधिराजतनया ध्यान से सुन रही हैं—यह सूचित करने के लिये मध्य में हुँकारी देती थीं। जब वे सो गयीं, वटवृक्ष के ऊपर बैठे शुक ने समझा, अब भगवान शंकर कथा बन्द कर देंगे। अतः उसने पार्वती के स्वर में हुँकृति देनी प्रारम्भ कर दी। भगवान शिव तन्मय बोल रहे थे। उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि हुँकृति

कोई दूसरा दे रहा है। कथा समाप्त होने पर शिव ने पार्वती से पूछा—'तुमने सावधान होकर सुना ?' किन्तु गिरिराजतनया तो सो रही थीं। अब शंकर चौंके—'यह हुँकृति कौन दे रहा था ?'

शिव ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। वटवृक्ष पर बैठा तोता दृष्टि में आ गया। प्रश्न उठा–'यह पक्षी कथा-श्रवण कर चुका, अपने स्वभाव के अनुसार उसे जहाँ-तहाँ बोलता फिरेगा। अनाधिकारी तो आत्मज्ञान का श्रवण करके पथ-भ्रष्ट हो जायगा। इस प्रकार यह विद्या, जो अमृततत्व-दायिनी है, संसार में अनर्थ की सृष्टि करेगी।'

भगवान शंकर को पक्षी को मार देना उचित जान पड़ा। उन्होंने पिनाक उठाना चाहा, किन्तु शुक उड़कर भाग चला। इसलिए त्रिशूल लेकर त्रिलोचन उसके पीछे दौड़े। शुक उड़ता हुआ कैलाश से सरस्वती अलकनन्दा संगम पर स्थित शम्याप्राश वन में महर्षि वेदव्यास के आश्रम में पहुंचा। उसी समय व्यास-पत्नी ने जम्हाई ली। अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर शुक उनके मुख-मार्ग से उदर में प्रविष्ट हो गया। आशुतोष ने यह देखा। सन्तुष्ट होकर बोले—'अब तू इस तिर्यक् रूप में नहीं, महर्षि का पुत्र होकर मानव रूप में ही जन्म लेगा। मेरे द्वारा उपदिष्ट ज्ञान तेरे मुख से अब अनाधिकारी नहीं पा सकेगा।'

शुकदेव जी माता के गर्भ में बारह वर्ष रहे। बड़ी

कठिनाई से जब भगवान श्रीकृष्ण को व्यास जी ले आये, उन्होंने आश्वासन दिया कि भूमिष्ठ होने पर भी शुक को माया का स्पर्श नहीं होगा, तब माता के उदर से ये बाहर आये और नालोच्छेद से पूर्व ही विरक्त होकर वन में चले गये। (ब्रह्मवैवर्त पुराण)

रुद्राक्ष की उत्पत्ति और उसके भेद

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा से प्रकट होने के पश्चात् भगवान शिव दिव्य सहस्र वर्ष तक एकाग्र मन से तपस्या करते रहे। इसके अनन्तर लोक के मंगल के लिए उन्होंने लीलापूर्वक अपने नेत्र बन्द किये। इस प्रकार नेत्र बन्द करने से उनके नेत्रों से जो जल-बिन्दु गिरे, उनसे रुद्राक्ष और भद्राक्ष (शुभाक्ष) इन दोनों की उत्पत्ति हुई। ये श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इस भेद से चार प्रकार के होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णों को अपने क्रम से अपने वर्ण के अनुरूप रुद्राक्ष अधिक प्रभावशाली होता है।

आंवले के समान फल वाला रुद्राक्ष उत्तम माना जाता है। बेर के समान फल का मध्यम माना जाता है। छोटे फलों का रुद्राक्ष सम्पूर्ण अर्थों का साधक है, किन्तु कृमि भक्षित, छिन्न-भिन्न, कण्टकहीन, व्रणयुक्त, गोलाई से रहित रुद्राक्ष त्याज्य है।

जिस रुद्राक्ष में स्वतः नैसर्गिक रूप से छिद्र हो वह सर्वोत्तम है। जिसमें पुरुष के द्वारा छिद्र किया जाय, वह मध्यम कहा जाता है।

शरीर में ११०० रुद्राक्षों का धारण श्रेष्ठतम है। इनके धारण करने का क्रम इस प्रकार है—

५५० दानों का मुकुट सिर पर धारण करना चाहिए।

३६० दाने यज्ञोपवीत के रूप में धारण किये जाने चाहिए।

शिखा में तीन, कानों में छः-छः और कण्ठ में १०१ दाने धारण करने चाहिए।

भुजाओं में ११-११, कुहनी तथा कलाइयों में ११।

यज्ञोपवीत में तीन और कटि में पाँच रुद्राक्ष धारण करने चाहिए।

उत्तम प्रकार का रुद्राक्ष धारण करना सम्भव न हो तो मध्यम प्रकार की विधि है—शिखा में १, सिर पर ३०, गले में ५०, भुजाओं में १६, मणिबन्ध में १२, कन्धे में ५००, यज्ञोपवीत के रूप में १०८।

एक तीसरा प्रकार है—शिखा में १, सिर पर ४०, कण्ठ में ३२, हृदय पर १०८, कान में ६-६, भुजाओं में १६-१६ और हाथ में १२-१२ रुद्राक्षों को धारण करे।

रुद्राक्ष एकमुखी से लेकर चौदह मुखी तक के होने का

वर्णन मिलता है। इन सबका प्रभाव अलग-अलग है। इनके धारण के स्थान और मन्त्र अलग-अलग हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

एक मुख—शिवस्वरूप होता है, भुक्ति-मुक्तिदायी होता है। इसके धारण का मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमः। यह सर्वोपद्रव नाशकर्ता है जहाँ रहता है वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती है।

दो मुख—देवदेवेश का स्वरूप है। सर्वकामप्रद है। गोहत्या के पाप का भी निवारक है। इसका मन्त्र है—ॐ नमः।

तीन मुख—यह विद्यादाता है। इसके धारण का मन्त्र है—क्लीं नमः।

चार मुख—ब्रह्मा का स्वरूप है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों का दाता है। मनुष्य-हत्या के पाप का भी निवारक है। इसका मन्त्र है—सः।

पाँच मुख—यह प्रायः बहुत अधिक पाया जाता है। यह रुद्ररूप है। कालाग्नि-स्वरूप है। सब कामनाओं का दाता है। मोक्षदायी है। सर्व पापहारी है। इसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमः।

षट् मुख—स्वामी कार्तिक का स्वरूप है। यह दाहिनी भुजा में धारण किया जाता है। ब्रह्महत्या आदि पापों

का निवारक है। इसके धारण का मन्त्र है—ॐ हूँ नमः।

सप्त मुख—यह अनंगस्वरूप है। इसका धारण करने वाला दरिद्र भी धनी हो जाता है। यह भी दाहिनी भुजा में ही धारण किया जाता है। इसके धारण का मन्त्र है—ॐ ह्रीं हूँ नमः।

अष्ट मुख—यह भैरवस्वरूप अथवा वसुस्वरूप है। सब विघ्नों को दूर करके पूर्णायु देता है। अल्पायु पुरुष भी इसको धारण करके अरिष्ट से मुक्त हो जाता है। इसे वाम भुजा में धारण किया जाता है। इसके धारण का मन्त्र सप्तमुख रुद्राक्ष के समान ही है।

नवमुख—यह रुद्राक्ष दुर्गा का स्वरूप है। सर्वेश्वरत्व देता है। यह कण्ठ में और सिर पर धारण किया जाता है। इसके धारण का मन्त्र भी वही है जो सप्तमुख और अष्टमुख का है।

दशमुख—यह जनार्दन का स्वरूप है। समस्त कामनाओं का दाता है। यह मस्तक पर धारण किया जाता है। इसके धारण का मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमः।

एकादशमुख—यह रुद्रस्वरूप है। सर्वत्र विजय देने वाला है। शिखा में धारण किया जाता है। इसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं हूँ नमः।

द्वादशमुख—आदित्यस्वरूप है। केशों में धारण किया जाता है। यह नेत्र के समस्त रोगों का निवारक है। बुद्धि और स्वास्थ्य देता है। इसका मन्त्र है—ॐ क्रों क्षों रों नमः।

त्रयोदशमुख—विश्वेदेवा का स्वरूप है। सौभाग्य और मंगलदायी है। इसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो नमः।

चतुर्दशमुख—यह रुद्राक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। यह परम शिव का स्वरूप है। मस्तक पर धारण किया जाता है। सर्वपापहारी, परमपददायी है। इसका मन्त्र है—ॐ नमः।

उपर्युक्त विवरण में जिन रुद्राक्षों के धारण का स्थान नहीं दिया गया है उनके शरीर पर धारण का क्रम पहले दिये गये विवरण के अनुसार है।

(शिव पुराण)

(रुद्राक्ष के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए 'रुद्राक्ष महात्म्य और धारण विधि' मूल्य—६.००)

काशी-मरण से मुक्ति

सात पुरियाँ मोक्षदायिनी कही जाती हैं—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारिका। इनमें से काशी के अतिरिक्त दूसरी पुरियों में मरने से अथवा दीर्घकालीन वास करने से

परम्परा रूप में मोक्ष प्राप्ति होती है। इसका अर्थ है कि दूसरा जन्म उसी पुरी में ही होता है और वहाँ साधन करना पड़ता है अथवा पुनः काशी में जन्म होता है और तब वहां मरकर मोक्ष-प्राप्ति होती है।

काशी वरुणा और गंगा के संगम से लेकर असी (यह लगभग शुष्कप्राय) नाला है, इसके गंगा में मिलने के स्थान तक पूर्व और पश्चिम ढाई योजन लम्बा, उत्तर-दक्षिण आधा योजन चौड़ा अर्थात् लगभग १० मील लम्बा तथा चार मील चौड़ा क्षेत्र है। इसके उत्तर में तिमिचण्डेश्वर, दक्षिण में शंकुकर्ण एवं ओंकारेश्वर स्थान हैं। इस पुरी को काशी, वाराणसी, अविमुक्त क्षेत्र, आनन्द-कानन, महाश्मशान, रुद्रावास, काशिका, तपस्थली, मुक्त-भूमि, शिवपुरी, त्रिपुरारिराजनगरी,—इन बारह नामों से पुकारा जाता है।

काशते ब्रह्म यस्याम्—जहाँ मरते हुए प्राणियों पर ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हो जाता है, उस स्थान का नाम काशी है।

भारत के प्रायः सब तीर्थ काशी में हैं। तीर्थ स्थानों के मुख्य मन्दिर का जो नाम है, उन मन्दिरों का, जो पुराणों में वर्णित हैं, वे उन्हीं नामों से काशी में भी अवश्य हैं। यह बात दूसरी है कि अब उनमें से बहुत से नष्ट या

लुप्त हो गये हैं। इस प्रकार काशी सम्पूर्ण तीर्थों का पुंजीभाव है।

काशी सम्पूर्ण भारत का प्रतीक है, यह बात केवल तीर्थों के कारण नहीं है। भारत के सभी प्रान्तों के निवासी वहाँ पृथक्-पृथक् समुदायों में बसे मिल जाते हैं, जहाँ वे अपनी भाषा, अपने वेश और अपने प्रान्तीय रहन-सहन में रहते हैं। इसलिए यदि पूरी काशी को अच्छी तरह देख लिया जाय तो भारत के सभी प्रान्तों के आहार, आचार और भाषा का परिचय प्राप्त हो जाता है।

काशी में मरने वाले मनुष्य को भगवान् शंकर तारक मन्त्र का उपदेश करके मुक्त कर देते हैं—यह बात पुराणों में बहुत प्रसिद्ध है और इस पर महात्माओं ने कभी सन्देह नहीं किया है।

यदि प्राणी संयमी है, साधक है, विरक्त है तो भगवान् शंकर के उपदेश के बाद वह अविलम्ब मुक्त हो जाता है।

यदि प्राणी पापी है, मलिन हृदय है तो मरते समय शकर जी के तारक उपदेश के अनन्तर उसे भैरव ले आते हैं। वे मलिन हृदय जीवों को भयंकर दण्ड देकर शीघ्र मुक्त कर देते हैं। किसी के द्वारा किये गये पाप तारक उपदेश के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं और किसी के किए हुए पाप इस घोरतम भैरवी यातना से भोग लिए जाते हैं।

पापों का फल इस प्रकार भोग लिए जाने के पश्चात् शिवगण उस प्राणी को शिवलोक में ले जाते हैं जहाँ वह रुद्रगण होकर अपने पुण्यों का फल थोड़े समय में भोग लेता है। तब पाप-पुण्य दोनों सम होने पर मरते समय जो भगवान् शिव का ध्यान करता है, वही आत्म ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है।

जिस जीव ने जान-बूझकर पाप किया है, उसे रुद्र पिशाच होना पड़ता है। इस योनि की अन्तिम आयु तीस हजार वर्ष है। पापों के अनुसार रुद्रपिशाच कम या अधिक आयु का भोग करते हैं। इस आयु में उसे भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। उसे निरन्तर पीटा जाता है, अन्न, जल कुछ नहीं मिलता, वह अग्नि में जलाया जाता है, जल में डूबे रहने को उसे विवश किया जाता है, धूप में तपता है, कीचड़ में फेंका जाता है, गर्म तेल में डाला जाता है, शस्त्रों से काटा जाता है। यह सब होते हुए भी उसे मूर्छा नहीं आती। विवश होकर सब कष्ट सहना पड़ता है। ये कष्ट पापों के अनुसार कम समय के भी हो सकते हैं, तीस हजार वर्ष के भी हो सकते हैं। जब यह अवस्था समाप्त हो जाती है, वह शिवलोक जाकर अपने पुण्यों का फल भोग करता है। पाप और पुण्य दोनों फल-भोग समाप्त होने पर उसका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और निर्मल अन्तः

करण में पहले का किया हुआ उपदेश जागृत हो जाता है।

मरते प्राणी को भगवान् शंकर तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं, यह बात साधारण व्यक्ति नहीं देख सकता, किन्तु परमहंस रामकृष्ण जी काशी पधारे तो उन्होंने इसे प्रत्यक्ष देखा था। उनके जीवन-चरित में वर्णन है। एक दिन वे दशाश्वमेघ घाट से नाव पर बैठकर गंगा जी में मणि-कर्णिका घाट की ओर जा रहे थे। मणिकर्णिका के समीप नाव पहुंचते ही परमहंस जी नाव में किनारे आकर ध्यान-मग्न हो गये। मल्लाहों ने समझा कि ये गंगा में कूदने वाले हैं। दौड़कर समीप आये। किन्तु उन्होंने देखा, परम-हंस जी का मुख तेज से प्रकाशित हो रहा है। वे जलती चिता की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर मुस्करा रहे हैं।

ध्यान टूटने पर उन्होंने बतलाया—'मैंने देखा कि एक गोरवर्ण पीली जटा वाला त्रिनेत्र पुरुष, सम्भवतः भगवान् शंकर, प्रत्येक शव के समीप आकर जीवात्मा को थोड़ा-सा उठाते हैं, उसके सूक्ष्म शरीर के दक्षिण कर्ण में मुख लगा कर कुछ कहते हैं। अवश्य ही वे तारक मन्त्र का उपदेश देते होंगे। इसके पश्चात् स्वयं महाकाली आकर अपने हाथों से जीव के सूक्ष्म एवं कारणस्वरूप बन्धनों को खोल देती हैं। जैसे ही शव चिता पर चढ़ाया जाता है। दोनों वहां से पृथक् हो जाते हैं।

क्योंकि काशी का मणिकर्णिका घाट का श्मशान महाश्मशान है, किसी को स्मरण नहीं कि वहां चिता की अग्नि कभी बुझता हो। इसलिए भगवान शंकर का यह तारक उपदेश अविराम वहाँ चलता रहता है।

भारतीय संस्कृति और शिव

भारतीय संस्कृति का आधार है उसका विश्वात्मवाद जिसका प्रारम्भ इस प्रार्थना से होता है कि—

दुर्जन सज्जन हो जायें,
सज्जन शांति पायें,
शान्त मुक्ति पायें,
और जो मुक्त हो गये हैं,
वे दूसरों को मुक्ति की राह बताएं।

सबके सुख की, सबके कल्याण की कामना करने वाली भारतीय संस्कृति का यह शिव भाव उतना ही पवित्र और निश्छल है जितना भारतीय दर्शन, चिंतन, कला, साहित्य एवं लोक परम्परा में सुगंध की तरह घुले 'शिव'। जिनके ईशान, रुद्र, आसुतोश, केश्री पशुपत आदि न जाने कितने नाम हैं। अगर हम शिव के स्वरूप के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें तो पायेंगे कि शिव की कल्पना का एक दार्शनिक आधार है जिसके बीज वैदिक युग में ही पड़ने प्रारम्भ हो गये थे।

ऋगवेद के ऋषि रुद्र से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने आयुधों को उनसे दूर रखें। अथर्ववेद तक आते-आते रुद्र को महादेव कहा गया। यहाँ समस्त तारे और चन्द्रमा रुद्र के नियन्त्रण में हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार रुद्र उषा के पुत्र थे। जब वे प्रजापति बने तो उन्हें एक नया नाम मिला। वज्र ब्राह्मण ग्रन्थ से रुद्र का उत्कर्ष प्रारम्भ होता है। श्वेताश्वर उपनिषद् तक आते आते उनके ईशान, महेश्वर और ईश आदि नाम भी हो गये। यहाँ मोक्ष की इच्छा रखने वाले योगी शिव का ध्यान करते हैं क्योंकि वे ही स्रष्टा और ब्रह्म हैं। श्वेताश्वर उपनिषद् में पहली बार शिव की कल्पना विराट रूप धारण करती है। यहाँ उनका उल्लेख एक सृजन शक्ति के रूप में हुआ है जो पुरुष अथवा पारब्रह्म से मेल खाती है। जो त्रिगुणमयी है और जो प्रकृति को क्रियाशील बनाकर केवल प्रेक्षक के रूप में स्थिर रहती है। यहाँ प्रकृति को 'माया' और शिवनामी शक्ति को 'मायी' कहा गया है। प्रकृति पुरुष की इस कल्पना में जीव को मायाबद्ध माना गया है जो सांख्य एवं योग द्वारा पुनः पुरुष अर्थात् ब्रह्म से साक्षात् करता है।

उपनिषदों के बाद सूद्रकाल में भी शिव स्कन्द एवं विनायक के साथ धर्म और गृह सूत्रों में प्रार्थना का विषय रहे। वैदिक आर्यों और सिन्धु घाटी में विद्यमान सभ्यता के तालमेल से रुद्र का अम्बिका के साथ तादात्म्य हुआ।

इस तरह इस देश में शक्ति साधना का सूत्रपात हुआ। इसी के साथ श्वेताश्वर उपनिषद् ने भक्ति के बीज भी बो दिए जो पाणिनि और बौद्ध युग तक आते-आते अंकुरित होने लगे। पाणिनि की अष्टाध्यायी में रुद्र अपनी उपाधियों के साथ तो विद्यमान हैं ही 'भक्त' और 'भक्ति' भी हैं जिनका विवरण माहेश्वर सूत्र में मिलता है। माहेश्वर सूत्र शिव द्वारा व्यक्त किये गये माने जाते हैं।

अष्टाध्यायी के बाद कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शिव अन्य देवी-देवताओं के साथ भारतीय संस्कृति में और गहरे उतरते हैं क्योंकि यहां दुर्गों के भीतर बने मन्दिरों में उनका स्पष्ट उल्लेख है।

इस देश के दो महाख्यान रामायण और महाभारत में शिव की उपासना उनके रौद्र रूप से सौम्य रूप की ओर उन्मुख होती है। रामायण में महादेव, महेश्वर और त्र्यम्बम आदि कई पर्यायवाची उपाधियों के साथ शिव अब प्राणियों की ऊर्जा बन जाते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यि है कि शिव का केशी नाम ब्राह्मण संस्कृति के समानान्तर बनने वाली श्रमण, संस्कृति से आया। श्रवण संस्कृति के ऋषभदेव भी वहां केशी उपाधि से युक्त हैं। शिव का केशी रूप रामायण में गंगावतरण की कथा के माध्यम से स्पष्ट हुआ है। जहाँ शिव को प्रसन्न करने का सर्वाधिक कारक उपाय तपश्चर्या है। हालांकि इसी के साथ यह भी

सच है कि तपश्चर्या और योग भारतीय संस्कृति में स्वतंत्र विधान के रूप में भी विकसित हुए। ईसा से दो शताब्दी पूर्व पातंजलि ने अपने ग्रन्थ में शिव के अनेक नामों का उल्लेख किया है। रामायण में शिवोपासना तो प्रशस्त है ही वहां स्वयं शिव को भी योगाभ्यास करते दिखलाया गया है।

महाभारत में शिव का कल्याणकारी रूप द्रोणापर्व में वर्णित है। वनपर्व एवं कर्णपर्व में भी शिव वरदायी देवता के रूप में स्थित हैं। अर्जुन ने तप करके उनसे पाशुपत अस्त्र पाया था। नारायणीय पर्व में वर्णित अनेक धार्मिक मतों में पाशुपत भी एक है। माधव ने अपने सर्व-दर्शन संग्रह में पशुपत मत को नकुशील पाशुपत कहा है। साथ ही उसके पांच सिद्धान्तों की विशद् व्याख्या की है। यहां शिव को केन्द्र में रखकर पनपने वाले अन्य सम्प्रदायों का जिक्र भी जरूरी है। जिनमें सबसे पहले नाम लिया जाता है शैव सिद्धान्त का। शैव सिद्धान्त में चार पादों और तीन पदार्थों का प्रतिपादन है। चार पाद हैं—विद्या, क्रिया, योग और चर्या। तीन पदार्थ हैं—पति, पशु, और पाश। शैव सम्प्रदाय के सिद्धान्त पाशुपत सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की तुलना में कहीं अधिक संगत हैं।

ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य में रामानुज ने कापालिक सम्प्रदाय का जिक्र किया है। जिसके केन्द्र में भी शिव हैं।

काश्मीरी शैवमत अन्य सम्प्रदायों की तुलना में कहीं अधिक माननीय है। कश्मीरी शैव भक्त दो शाखाओं में विभक्त हैं। पहला है—स्पन्द शास्त्र; दूसरा प्रतिभिज्ञा शास्त्र। स्पन्द शास्त्र के कर्त्ता वसुगुप्त माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—शिवसूत्र और स्पन्द वाटिका। प्रतिभिज्ञा दर्शन के संस्थापक थे श्री सोमानन्द जिन्होंने शिव दृष्टि नामक ग्रन्थ लिखा। प्रतिभिज्ञा दर्शन पर की गई विस्तृत टीकाओं का श्रेय अभिनव गुप्त को दिया जाता है।

लिंगायत और वीर शैव सम्प्रदाय को वसव ब्राह्मण से जोड़ा जाता है। जिसकी कहानी वसव पुराण में दी है। लिंगायत सम्प्रदाय का जिक्र विज्जलराय चरित नामक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ में भी है। डा० फ्लीट के अभिलेखों के अनुसार लिंगायत सम्प्रदाय के संस्थापक वसव न होकर कोई एकान्तर रामय्या थे। लिंगायत सम्प्रदाय के अनुसार लिंग साक्षात शिव है जिसके तीन भेद हैं। १. भावलिंग २. प्राणलिंग ३. इष्टलिंग। भावलिंग कलाओं से रहित है। प्राणलिंग मनोग्राह्य है जबकि इष्टलिंग चक्षु ग्राह्य। वह इष्ट इसलिए कहा गया है क्योंकि वह सब क्लेशों को दूर करता है। लिंगायत में दीक्षा एवं अन्य संस्कारों पर अधिक बल होने के कारण उनकी एक शाखा आराध्य सम्प्रदाय के नाम से भी जानी जाती है। आराध्यों में

दीक्षा के समय पांच कलश स्थापित किए जाते हैं। जो क्रमशः शिव, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, और ईशान का प्रतिनिधित्व करते हैं। आराध्यों को यह नाम शायद इसलिए भी मिला क्योंकि उन्होंने गायत्री मंत्र एवं यज्ञोपवीत जैसे कई ब्राह्मण विधानों को ग्रहण कर लिया था। उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त शाक्त गाणपत्य एवं स्कन्द कार्तिकेय आदि सम्प्रदाय भी किसी न किसी रूप से शिव से जुड़े हैं।

जहाँ तक साहित्य का प्रश्न है शिव सबसे पहले अश्वघोष की 'बुद्धचरित' नामक कृति में उल्लिखित है। रामायण महाभारत का जिक्र हम पहले ही कर आये हैं। कालान्तर में शिव का जिक्र भरत के 'नाट्यशास्त्र' वात्स्यायन के 'कामसूत्र' और 'मनुस्मृति' में भी मिलता है। उपमा सम्राट कवि कालिदास की 'रघुवंश' और 'विक्रमोर्वशी' तथा 'मालविकाग्निमित्र' आदि कृतियों में जगह-जगह शिव की स्तुति है जबकि 'कुमारसम्भव' में शिव-पार्वती परिणय मदन-दहन और स्कन्द जन्म की कहानी विस्तार से है। इसी तरह 'मेघदूत' में शिव की उपासना किस तरह से की जाती है, इसका भी उल्लेख है। कालिदास के बाद दंडी के 'दशकुमारचरित' और वाणभट्ट की 'कादम्बरी' में भी शिव विद्यमान हैं। वाण के विषय में तो यह निश्चय है कि वे शैव थे। भास और शुद्रक की

कृतियों में भी केन्द्र शिव ही हैं।

भारतीय संस्कृति में शिव की महत्ता को स्पष्ट करने वाला अन्य पक्ष है हमारे यहाँ की पुरातात्विक सामग्री जिसमें शिलालेख, मन्दिर मूर्तियाँ एवं सिक्के सभी को शामिल किया जा सकता है। पुराणोत्तर काल में जो शिलालेख हमें शिव की प्रतिष्ठा के प्रमाण में मिलते हैं, उनमें सबसे पहले यशोवर्मा के शिलालेख का नाम लिया जा सकता है। सातवीं शताब्दी में राजा आदित्यसेन के अपसाद-शिलालेख में कार्तिकेय का उल्लेख किया गया है। इसी शती का अनन्त शर्मा का नागार्जुन पर्वत का गुफा लेख है जिसमें शिव-पार्वती को प्रतिमाओं की चर्चा है। राजा प्रवरसेन के ताम्रपत्र और उनके सिवनी के शिलालेख में 'भारशिव' नाम के किसी शैव सम्प्रदाय का जिक्र है। इसी तरह हरिवर्मा के सागलोई वाले ताम्रपत्र में ही शिव की सर्वोपरिता स्थापित की गयी है। नवीं शताब्दी के दंति वर्मा के शिखालेख में भी शिव की स्तुति है। खजुराहो शिलालेख में जो १००० ईस्वी का है, शिव का एकेश्वर माना गया है।

जहाँ तक मन्दिरों का प्रश्न है समूचा भारत शिव की प्रतिमाओं का भंडार है। शिव की विभिन्न प्रतिमाएं उनके अनेकानेकों रूपों को व्यक्त करती हैं, फिर चाहे उज्जैन का महाकाल मंदिर हो या काशी का विश्वनाथ मंदिर।

कल्याण सुन्दर मूर्तियों में शिव की एक छवि है तो महेश मूर्ति प्रतिमाओं में उनके पालक, संहारक और स्रष्टा रूप की। जो मूर्तियाँ शिव के दार्शनिक पक्ष को उद्‌घटित करती हैं उन्हें महासदाशिव कहा जाता है। ये शिव के सकल-निष्कल रूप का प्रतीक हैं। ऐसी एक मूर्ति 'एलीफेंटा' की गुफा में है। कुछ मूर्तियाँ अगर शिव के एकेश्वर रूप को व्यक्त करती हैं तो कुछ उनके अर्धनारीश्वर रूप को। कुम्भकोणम और काजीवरम् की मूर्तियाँ इस दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन हैं। शिव के क्रूर रूप को व्यक्त करने वाली मूर्तियों में भैरव मूर्ति का प्रचार सबसे ज्यादा है। भैरव यानी जो संसार का भरण, रवण और वमन करे।

शिव के नटराज रूप का अंकन क्योंकि कलाकारों को सर्वाधिक भाया, इसलिए उनका एक और नाम नटराज पड़ गया। इन मूर्तियों में वे जटाधारी चतुर्भुज और कृतिवासा है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा और गंगा दोनों विद्यमान हैं। क्योंकि गज दानव को मारकर शिव ने तांडव नृत्य किया था, इसलिए नटराज की इस मूर्ति में शिव के पैरों से कुचला गया दानव भी साथ ही उकेरा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग से लेकर आज तक इस देश की जिन्दगी के हर क्षेत्र में शिव ही शिव हैं। शिव के अभाव में भारतीय संस्कृत की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

॥ श्रीराम ॥

लंकेश्वर-कृत-शिव स्तुति

(एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर)

ॐ गौरीश्वराय भुवनत्रय कारणाय,
भक्ति-प्रियाय भव-भीति-भेदे भवाय ।
शर्वाय दुःख-शमनाय वृषध्वजाय,
रुद्राय काल-दहनाय नमः शिवाय ॥१॥

ओङ्कार स्वरूप, गौरीपति, तीनों भुवनों के आदि कारण, भक्ति-प्रिय, संसार के आवागमन स्वरूप भय के नाशक भय, शर्व दुःखहारी, वृषभध्वज रुद्र एवं काल के भी संहारक भगवान् शिव को नमस्कार ॥१॥

तस्मै नमः परमकारण-कारणाय,
दीप्तोज्वलोज्वलित पिंगल लोचनाय ।
नागेन्द्रहारकृत-कुण्डल-भूषणाय,
ब्रह्मेन्द्र-विष्णु-नमिताय नमः शिवाय ॥२॥

उस परम कारण के कारण को भी नमस्कार जिसके प्रदीप्त उज्ज्वल एवं प्रकाशमय पिंगलवर्ण (तीन) नेत्र हैं। नान्गेद्रों से हार, कुण्डल प्रभृति आभूषण बनाये, ब्रह्मा, इन्द्र तथा विस्णु द्वारा अभिवंदित भगवान् शिव को नमस्कार ॥२॥

सर्वेश्वरत्वेसति भस्म-शायिने,
उमापतित्वेसति चोर्ध्व-रेतसे ।

वित्तेश-भृत्येसति चर्मवाससे,
निवृत्तरागाय नमः तपस्विने ॥३॥

सर्वेश्वर होने पर भी जो भस्म में सोता है, उमापति (अर्धनारीश्वर) होने पर भी जो ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचारी) है, कुबेर जैसा भृत्य (सेवक) रखकर भी जो (गज) चर्म पहनता है, उस राग से विनिवृत्त तपस्वी को नमस्कार ॥३॥

ॐ कारेण विहीनस्य, नित्यमुद्विग्न चेतसः ।
तापत्रयाग्नि-तप्तस्य त्राणंकुरु महेश्वर ॥४॥

हे महेश्वर, मुझ ओंकार-विहीन, नित्य उद्विग्न चित्त तथा त्रय तापकी अग्नि से तपाये हुए का परित्राण करो ॥४॥

मदनोरग-दष्टस्य, क्रोधाग्नि-ज्वलितस्य च ।
लोभमोहादि-सक्तस्य, त्राणंकुरु महेश्चर ॥५॥

हे महेश्वर ! मुझ कामरूपी सर्प से काटे हुए क्रोधाग्नि में जलते हुए तथा लोभ-मोहादि में आसक्त का परित्राण करो ॥५॥

भटैर्नानाविधेर्घोरैर्यमस्याज्ञा - विधायकैः ।
तां दशां नीयमानस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ॥६॥

हे महेश्वर ? यमराज के आज्ञाकारी अनेक प्रकार की भयंकराकृति दूतों के द्वारा उस (नारकीय) दशा में जाए जाते हुए मेरा परित्राण करो ॥६॥

काय पोषण सक्तस्य, रोग-शोकाकुलस्य च ।
भवार्णव-निमग्नस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ।।७।।

हे महेश्वर ? मुझ शरीर के पोषण में आसक्त रोग एवं शोक से आकुल तथा संसार-सागर में निमग्न का परित्राण करो ।।७।।

तृष्णा-शृंखलयानाथ, बद्धस्य भयपंजरे ।
कृपार्द्र दीनचित्तस्य, त्राणं कुरु महेश्वर ।।८।।

हे नाथ ? हे महेश्वर ? मुझ तृष्णा की जंजीर में बंध कर भय के पिंजड़े में पड़े हुए दीनचित्त का कृपार्द्र होकर परित्राण करो ।।८।।

दुष्टस्य नष्ट-चित्तस्य, शिवमार्गोज्झितस्य च ।
अनाथस्य जगन्नाथ, त्राणंकुरु महेश्वर ।।९।।

हे जगन्नाथ ? हे महेश्वर ? मुझ दुष्ट, नष्ट चित्त (भ्रष्टचित्त) शिवा (कल्याण) मार्ग को छोड़े हुए अनाथ का परित्राण करो ।।९।।

संपार-पाश-दृढ़बंधन-पीडितस्य,
मोहान्धकार-विषयेषु निपातितस्य ।
कामार्दितस्य भयराग-खलीकृतस्य,
दीनस्य मे कुरुदयां परलोकनाथ ।।१०।।

हे परलोक के स्वामी ? मुझ संसार के बन्धन में कठोरता से बंधे हुए पीड़ित, मोह के अन्धकार द्वारा विषयों

के (गर्त) में गिराए हुए, काम के द्वारा मर्दित तथा भय एवं राग के द्वारा दुष्ट बनाये दीन पर दया करो ॥१०॥

दीनोऽस्मि मंदधिषणोऽस्मि निराश्रयोऽस्मि,
दासोऽस्मि साधुजनता-परिवर्जितोऽस्मि ।
दुष्टोऽस्मि दुर्भंग-रतोऽस्मि गतत्रयोऽस्मि,
धर्मोज्झितोऽस्मि विकलोऽस्मि कलंकितोऽस्मि ॥११॥

मैं दीन हूँ, मंद हूँ, निराश्रय हूं, दासवृत्ति करता हूँ, साधु संग से रहित हूँ, दुष्ट हूँ, कदाचारी हूँ, निर्लज्ज हूँ, धर्मभ्रष्ट हूँ, व्याकुल हूँ, और कलंकित हूँ ॥११॥

भीतोऽस्मि भंगुरतरोऽस्मि भयानकोऽस्मि,
शंकाशत-व्यतिकराकुल चेतनोऽस्मि ।
रागादि दोष-निचयैर्मुखरी कृतोऽस्मि,
सत्यादि शौच नियमैः परिवर्जितोऽस्मि ॥१२॥

मैं भयभीत हूँ (क्योंकि) अत्यन्त क्षणभंगुर हूँ (फिर भी दूसरों के लिए) भयानक (हो गया) है। सैकड़ों शंकाओं की उलझन से मेरी बुद्धि आकुल हो गई है। रागादि द्वेषों के समूहों ने मुझे वहिर्मुख बना दिया है और सत्यादि यम तथा शौचाश्र नियमों से मैं रहित हूँ ॥१२॥

जन्माटवी-भ्रमण-खेदित-मारुतोऽस्मि,
नित्यामयोऽस्माशरणोऽस्म्य समं जसोऽस्मि ।
आशा-निरंकुश-पिशाचिक-पाचितोऽस्मि,
दासोऽस्मि हा पशुपते शरणागतोऽस्मि ॥१३॥

जन्म मरण रूप वायु के द्वारा संसार कानन में भ्रमण करते-करते अत्यन्त कष्ट दिया गया है, नित्य रोगों से आक्रान्त रहता हूं, अशरण हूं, दुविधे में पड़ा हूँ। निरंकुश आशा पिशाचिनी मुझे पका रही है। हे पशुपति, मैं हा, हा, करता हूँ ? (आपका) दास हूँ ? (आपकी) शरण हूँ ! (रक्षा करो) ॥१३॥

हा हतोऽस्मि विनष्टौऽस्मि, दष्टोऽस्मि चपलेन्द्रियैः ।
भवार्णव निमग्नोऽस्मि, किं त्रातु माम मर्हसि ॥१४॥

हाय, मारा गया हूँ ? नष्ट हो गया हूँ। चंचल इन्द्रियों द्वारा (खून) काटाद गया हूँ। संसार सागर में डूब ही गया हूँ। क्या आपको मेरी रक्षा नहीं करनी ? ॥१४॥

यदि नास्मि महापापी, यदि नास्मि भयान्वितः ।
यदिनेन्द्रिय-संसक्तस्तत्कोर्थं, शरणं मम ॥१५॥

यदि मैं महापापी न होता, तो यदि मैं भयभीत न होता, यदि मैं इन्द्रियासक्त न होता, तो आप मुझे शरण की क्या आवश्यकता होती ? ॥१५॥

आर्तो मत्सदृशोनान्यस्त्वत्तो नान्यः कृपापरः ।
तुल्यएवावयोर्योगः कथं नाथ न पाहि माम् ॥१६॥

मेरे समान कोई (विश्व में) आर्त नहीं है और आपके समान कोई कृपालु भी नहीं है। हम दोनों का बराबर संयोग मिला है। हे नाथ फिर भी आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ? ॥१६॥

आकर्णयाशु कृपणस्य वचांसि सम्यक,
लुब्धोऽस्मि नाथ बहुभिर्ननु जन्मबन्धैः
अद्य प्रभो यदि दया कुरुषे न में त्वं,
त्वत्तः परं कथय कं शरणं व्रजामि ॥१७॥

शीघ्र ही मुझ कृपण की प्रार्थना को भली प्रकार आप सुनें ? क्योंकि हे नाथ, अनेक जन्मों से मैं आपकी कृपा पर मुग्ध हूं। हे प्रभो, यदि आज भी आप मुझ पर दया नहीं करते हैं तो कहिये भला आपको छोड़कर में और किसकी शरण में जाऊँ ॥१७॥

द्वेष्योहं सर्वजन्तूनां बंधूनां च विशेषतः।
सुहृद्वर्गस्य सर्वस्य किमन्यत्कथयामिते ॥१८॥

सम्पूर्ण प्राणियों का, विशेषतः बन्धुओं का तथा सभी सुहृदयों का मैं द्वेषी हूँ। (अतः कहीं शरण मिलने की आशा नहीं) आपसे और क्या कहूँ ॥१८॥

मातापितृ विहीनस्य, दुःखशोकातुरस्य च।
आशा-पाश-निवद्धस्य, रागद्वेषायुतस्य च ॥१९॥

माता-पिता रहित, दुःख एवं शोक से आतुर आशा की फाँसी से बंधे और राग-द्वेष संयुक्त (मैं अधम हूँ) ॥१९॥

देव देव महादेव शरणागत वत्सल।
नान्यस्त्रातास्ति में कश्चित्त्वदृते परमेश्वर ॥२०॥

हे शरणागत वत्सल देव देव महादेव! परमेश्वर!

आपको छोड़कर मेरा परित्राण करने वाला और कोई है नहीं ॥२०॥

भीतोऽस्मि कालवशगोऽस्मि निराश्चयोऽमि,
खिन्नोऽस्मि दुःख-जलधौ पतितोऽस्मिशंभो।
आर्तोऽस्मि मोह-पटलेन समावृतोऽस्मि,
त्वां चन्द्रचूड़ शरणं समुपागतोऽस्मि ॥२१॥

हे शंभु मैं डरा हुआ हूँ, काल के वश में गया हुआ हूँ। निराश्रय हूँ, खिन्न हूँ तथा दुःख के समुद्र में गिर पड़ा हूँ! मैं आर्त हूँ और मोह की यवनिका से ढक गया हूँ। अतएव हे शशांक-शेखर, आपकी शरण आया हूँ ॥२१॥

आशिरवान्त निमग्नोऽस्मि, दुस्तरे भवकर्दमे।
प्रसीद कृपया शंभो, पादाग्रेणोद्धरस्व माम् ॥२२॥

मैं इस अपार संसार-कीच में चोटी तक डूब चुका हूँ। हे आशुतोष आप प्रसन्न हों। कृपा करके अपने चरणाग्र से मेरा उद्धार करें ॥२२॥

श्रुत्वा मे भवभीतस्य, भगवान् करुणागिरः।
तथा कुरु यथा भूयो, न वान्धते भवापदः ॥२३॥

भगवन्! मुझ भवभीत की करुण वाणी सुनकर आप वैसा ही करें जैसा करने से संसार रूप आपत्ति फिर बाधा नहीं देती ॥२३॥

समय-शत-विलुप्तं, भक्तहीनं कुचैलं,
मलिन-वसन-गात्रं निर्धनं पापशीलम्।

रविज-भृकुटि-भीतं रोगिणं प्राप्त-दुखं,
खलजन-परिभूतं रक्षमां सर्व शक्ते ॥२४॥

सैकड़ों युगों से नष्ट प्राय, भक्तिहीन, अपवित्र आवरण धारी, शरीर पर मैले वस्त्र पहिने, निर्धन, पापिष्ठ, यमराज की कठोर भृकुटि से डरे हुए, रोगी, दुःखी एवं दुष्टों से आक्रान्त मेरी हे सर्व शक्तिमान आप रक्षा करें ॥२४॥

आपन्नोऽस्मि शरण्योस्मि, सर्वावस्थाऽस्मि सर्वदा ।
भगवंस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि, रक्ष मां शरणागतम् ॥२५॥

मैं [आर्त होकर] आ गया हूं, शरण देने योग्य वा शरणेच्छु हूं, सभी अवस्थाओं में और सर्वदा आपकी शरण हूँ, अतः मुझ शरणागत की रक्षा करें ॥२५॥

जातस्य जायमानस्य, गर्भस्थस्यापि देहिनः ।
मा भूत्तत्र कुले जन्म, यत्र शंभुर्न दैवतम् ॥२६॥

पैदा हो चुके, उत्पन्न हो रहे एवं गर्भस्थ किसी भी देहधारी का जन्म ऐसे कुल में न हो, जिसमें भगवान् शंकर की आराधना न होती हो ॥२६॥

शंकरस्य च ये भक्ताः, शांतास्तद्गत-मानसाः ।
तेषां दासस्य भूयासं दासो जन्मनि जन्मनि ॥२७॥

जो शान्त तथा तद्गत चित्त [नित्य तन्मय] भगवान् शंकर के भक्त हैं, जन्म जन्म में हम उनके दासों के दास होवें ॥२७॥

नमस्कारादि संयुक्तं, शिवमित्यक्षर द्वयम् ।
जिह्वाग्रे वसते यस्य, सफलं तस्य जीवनम् ॥२८॥

जीवन उसी का सफल हुआ, जिसकी जीभ के अग्र भाग पर नमस्करादि संयुक्त 'शिव' ये दो अक्षर निवास करते हैं ॥२८॥

यत्कृतं यत्करिष्यामि, तत्सर्वं न मया कृतम् ।
त्वया कृतं त्वं फल भुक्त्वमेव परमेश्वर ॥२९॥

मैंने जो कुछ भी किया है या करूँगा, वह मैंने नहीं किया है। हे परमेश्वर, वह आपने किया है। आप ही उसके फल भोक्ता हैं। अतः आप ही भोगें ॥२९॥

महादेवं भवं रुद्रं, शिवं त्रिनयनं हरम् ।
बृषाकपिं त्र्यंबकं च, धूर्जटिं नीललोहितम् ॥३०॥
स्थाणु पशुपतिं भीमं शंकरं बृषभध्वजम् ।
एतानि गुह्यनामानि, पंचादश समाहितः ॥३१॥
नित्य स्मरति यस्तस्य सिध्यन्ते सर्व सिद्धयः ।
शिवलोके ब्रजेत्सोपि, ईश्वरस्य प्रसादतः ॥३२॥

महादेव, भव, रुद्र, शिव, त्रिनयन, हर, बृषाकपि, त्र्यबक, धूर्जटि, नीललोहित ॥३०॥ स्थाणु, पशुपति, भीम, शंकर और बृषभध्वज इन पन्द्रह गुप्त नामों को जो एकाग्र होकर ॥३१॥ नित्य स्मरण करता है, उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त [सिद्ध] हो जाती हैं और श्री महेश्वर के प्रसाद से शरीर त्यागान्तर वह शिवलोक को प्राप्त होता है ॥३२॥

शिवमादौ शिवमध्ये शिवमन्ते च सर्वदा ।
सर्वेषां शिव भक्तानां नराणामस्तु वै शिवं ॥३३॥

इस सृष्टि के आदि कारण भगवान् शंकर हैं, मध्य में भववान् शिव ही [सृष्टि-रूप से] हैं और अन्त में भी सर्वदा वही प्रलयंकर शेष रह जाते हैं । अत: समस्त शिव-भक्तों-सभी मनुष्यों का कल्याण [उन्हीं भगवान् शिव की कृपा से] हो !!३३॥

यदक्षरे परिभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद्गनम् ।
मयि दासेन विज्ञप्ति: क्षम्यतां परमेश्वर ॥३४॥

मुझ दास द्वारा की गई इस प्रार्थना में जो अक्षर अनुच्चारित रह गये हों अथवा मात्राहीन उच्चारित हो गये हों हे परमेश्वर, उन सभी भूलों को आप क्षमा करें ॥३४॥

●

अनुष्ठान का प्रयोजन—श्री महामृयुत्ञ्जय का अनुष्ठान नीचे लिखे विभिन्न कार्यों के लिए होता है । (१) यदि जन्म, मास, गोचराष्टक-वर्ग और दशान्तर्दशा में ग्रह जन्य पीड़ा का योग हो । (२) बन्धु-बान्धव का वियोग हो रहा हो । (३) नगर, ग्राम या किसी क्षेत्र में महामारी आदि रोगों से लोगों की मृत्यु हो रही हो । (४) (राज्य)

सत्ता, पदाधिकार जा रहा हो। (५) धन-हानि हो रही हो अथवा दारिद्र्य-शोक हो। (६) किसी ने शीघ्र मृत्यु होने को कह दिया हो। (७) कुण्डली-मेलापक में नाड़ी-दोष आता हो। (८) राजभय या अभियोग उपस्थित होने पर। (९) मनोधर्म का विपर्यय हो जाने पर। (१०) राष्ट्र-भंग हो रहा हो। (११) परस्पर घोर क्लेश हो रहा हो। और (१२) त्रिदोषजन्य दुर्निवार्य रोग हो, तो इन परिस्थितियों में यथाविधि महामृत्युञ्जय का जप करना या करवाना चाहिए।

कार्य के अनुसार मंत्र-जप संख्या—कामना के अनुसार महामृत्युञ्जय मंत्र-जप की संख्या निम्नोक्त है—

(१) यदि किसी प्रकार की महामारी या अन्य प्रकार से देश में महा-उपद्रव या अशान्ति हो रही हो तो उनकी रोक-थाम के लिए एक करोड़ जप। (२) यदि किसी प्रकार का सामान्य रोग हो, अशुभ स्वप्न हुआ हो या अन्य कुछ भय हो तो सवा लाख जप। (३) यदि अपमृत्यु का भय हो अथवा कुछ संदिग्ध दुर्वार्ता सुनी हो तो दस हजार जप। (४) यदि यात्रा में भय हो तो एक हजार जप। और (५) अभीष्ट-सिद्धि, पुत्र-प्राप्ति, (राज्य) उच्च पद-प्राप्ति के लिए अथवा यथेच्छ मान-सम्मान, धन-लाभादि के लिए सवा लक्ष का पुरश्चरण आवश्यक है।

अनुष्ठान की विधि—(१) कोई भी अनुष्ठान किसी कार्य-सिद्धि के लिए किया जाय, उसे शास्त्रोक्त विधि के अनुसार यथासमय करना चाहिए। आपत्ति से ग्रसित हो जाने पर मनमाने ढंग से कर्म करना अच्छा नहीं। (२) किसी कार्य-विशेष के कारण विवश होकर अचानक सहसा प्रयोग अनिवार्य हो तो शुभवेला में इसका तात्कालिक प्रयोग भी किया जा सकता है। (३) यदि सब प्रकार की सानुकूलता हो और किसी महात्प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रयोग किया जाय तो मुहूर्त्तज्ञ ज्योतिषी से चन्द्र-तारादि-बल संयुक्त अच्छे मुहूर्त्त का दिन निश्चय करावें तथा शिवालय, सौम्य देवालय अथवा अपने गृह में ही किसी पवित्र स्थान को झाड़-बुहार-धो-लीप-पोत कर, आसन भूमि का कूर्म शोधन और दीप-स्थान को शुद्ध करें। मुहूर्त्त का प्रथम दिन गायत्री जपादि से प्रायश्चित्त करें तथा मुहूर्त्त के दिन प्रातःकाल स्नान, संध्या-देव पूजा आदि नित्य कृत्य को पूरा कर प्रयोग के स्थान में अपने आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन, प्राणायाम, शान्ति पाठ और देव-प्रणामादि करने के पश्चात् स्वस्थ-चित्त और एकाग्र मन से जप करें। कदाचित् पार्थिव-पूजापूर्वक जप करना हो तो मेरी बड़ी बहन जी श्रीमती सुशीला देवी गुप्ता द्वारा संपादित 'श्रीभगवत्पूजन-विधि' नामक पुस्तिका

में लिखित विधि के अनुसार मृत्तिका (मिट्टी) का शिव-लिंग बनाकर उसकी पूजा करें एवं उस पार्थिव शिवलिङ्ग के सान्निध्य में संकल्प पूर्वक जप करें और यदि मूर्ति मौजूद हो तो उसी के पूजनोपरान्त जप करें। (६) जप करनेवाला ब्राह्मण शुद्धचेता प्रयोग-विधि का ज्ञाता, निर्वैर, निर्लोभी, उदार दयालु, परोपकारी, अनुष्ठानी, देवताराधक और नियम-संयम से पूर्ण होना चाहिए। कदाचित् ब्राह्मणों की संख्या एक से अधिक हो तो वे भी उपरोक्त गुण-संयुक्त विषम संख्या में (जैसे १, ३, ५, ७, ६ या ११ ब्राह्मण) होने चाहिए। (७) प्रयोग यदि स्वयं करें तो कहना ही क्या, और यदि यजमान की ओर से दूसरों के द्वारा हो तो यजमान का चित्त भी शुद्ध, शान्त, सरल, असंशयी और कार्पण्य-रहित होना चाहिए। (८) प्रयोग की दैनिक जप-संख्या, स्थान आसन, अशन और समय जप-पूर्णाहुति-काल तक निश्चित एवं समान रहने चाहिए। विषमता से विक्षेप सम्भव है। प्रयोग यदि पुरश्चरणात्मक हो तो समाप्ति के समय जप-संख्या का दशांश हवन, हवन-संख्या का दशांश तर्पण, तर्पण-संख्या का दशांश मार्जन-संख्या का दशांश (या कार्यानुसार न्यूनाधिक) ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। (१०) यदि प्रयोग एक ही दिन का हो और हवनादि न हो सके तो उस परिमाण के जप अधिक कर देना चाहिए; किन्तु ब्राह्मण-भोजन अथवा भोजन के

निमित्त सिद्धान्त या निश्क्रय द्रव्य देना अनिवार्य है। ऐसा करने से ही कार्य-सिद्धि होती है। वर्तमान समय में विधर्मियों के संसर्ग और प्रभाव से लोगों के विचार बहुत बदल गये हैं। धर्म-कर्मानुष्ठानों में लोगों की श्रद्धा घट रही है और निरर्थक कामों में व्यर्थ अर्थ-व्यय करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है; फिर भी जिनकी अपने धर्म एवं शास्त्रों में कुछ श्रद्धा अवशिष्ट हो, उन्हें अपने सर्वविधि कल्याण के लिए इस महामृत्युञ्जय-प्रयोग का आश्रय लेना चाहिए।

हवन विधि—(१) जप पूरा हो जाने के पश्चात् हवन-सामग्री के अनुसार शास्त्रोक्त प्रमाण से वेदी बनावें (अथवा विशेष परिस्थिति में तांबे या मिट्टी का बना हुआ हवन-कुण्ड स्थापित करें), कुश-कण्डिका-विधि के अनुसार अग्नि-स्थापन कर शास्त्रोक्त विधि से यथापरिमित यथोचित द्रव्य का हवन करें। सामान्यत: हवन-सामग्री में तिल जितनी मात्रा में हो, उसकी आधी मात्रा में यव, यव का आधा चावल, चावल का आधा शक्कर और शक्कर (खांड) का आधा घी रखने से उचित प्रमाणानुसार शाकल्य तैयार हो जाता है। इस शाकल्य में पञ्चमेवा, भोजपत्र और चन्दन का भूरा भी छोड़ना चाहिए; लेकिन कामना विशेष के लिए हवन भी कई द्रव्यों का करना पड़ता है। (२) यदि सवा लक्ष का पुरश्चरण किया हो तो उसमें

बिल्वफल, तिल, खीर, सरसों, दूध, दही, दूर्वा, बट, पलास और खैर की समिधा, इनको मधुराप्लावित कर (शहद में डुबोकर) यथाक्रम हवन करना चाहिए। (३) रोग-व्याधि के निवारण या शत्रु पर विजय-प्राप्ति के लिए धन, सम्पत्ति, दीर्घायु-लाभ की कामना हो तो सुधावल्ली (गिलोय) की बेल के चार-चार अंगुल के टुकड़ों का हवन करें। (४) लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए बिल्व-फल का हवन करें। (५) ब्रह्मत्व-सिद्धि के लिए पलाश की समिधा का हवन करें। (६) धन-प्राप्ति के लिए बट की। (७) कान्ति-वृद्धि के लिए खैरी (खदिर) की। (८) अधर्म (पाप) नाशार्थ तिलों की। (९) शत्रु-नाशार्थ सरसों की। (१०) यश एवं श्री-लाभार्थ खीर की। (११) कन्या व अपमृत्यु-निवारणार्थ दही की। (१२) रोग-क्षय के लिए तीन-तीन दूर्वाओं की। (१३) प्रबल ज्वर-नाश के लिए अपामार्ग (औंधाकोरा) की, अग्नि से पकाई खीर की। (१४) वशी-करण के लिए गाय के दूध व घास से मिली हुई दूर्वाङ्कुरों की और (१५) सर्व प्रकार के रोगों से मुक्ति के लिए काश्मीरी की तीन-तीन समिधा तथा दूध और अन्न की आहुतियों से हवन करें। हवन की प्रत्येक आहुति में 'स्वाहा' शब्द कहें और हवन के पीछे एक पात्र में जल व दूध मिलाकर, उसमें से अञ्जली या अर्घ में जल लेकर

"महामृत्युञ्जयं तर्पयामि" अथवा "अमुकं तर्पयामि" यह उच्चारण करता हुआ तर्पण करें और दूर्वांकुरों से जल ले-लेकर स्वयं प्रयोग हो तो अपने शरीर पर और यजमान की ओर से किया हो तो यजमान के शरीर पर दशांश संख्यामित मार्जन करें।

संकल्प-विधि—विद्वानों के लिए तो कोई विधि-निर्देश सर्वथा अनावश्यक है; किन्तु सर्व-साधारण के लिए लिखना पड़ता है कि सब कामों की संकल्प से ही सिद्धि होती है और साधारण लोग बहुधा संकल्प में विकल्प कर देते हैं। अतः स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी कामना के लिए यजमान की ओर से अनुष्ठान करना हो तो कार्यारम्भ के पहले कामना का सम्बोधन करके यजमान के हाथ से संकल्प करायें, फिर अनुष्ठानकर्त्ता को प्रति बार स्वयं संकल्प करना चाहिए। अपने लिए अनुष्ठान कराने वाले को प्रतिदिन स्वयं संकल्प करना चाहिए। (२) संकल्प की कल्पना में यह ध्यान रखना चाहिए कि किसकी ओर से क्या काम, किसके द्वारा, कितना किया जाता है। इन बातों का व्याकरण के अनुसार शुद्ध सम्बोधन कर संकल्प करना-कराना चाहिए। उदाहरणार्थ यहाँ दो-चार संकल्प दिये जा रहे हैं। (३) ॐ तत्सदद्येत्यादि० अमुक गोत्रोऽमुकशर्मा ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणतन्त्रोक्तफलावाप्तये मम जन्म-

वर्ष-मास-दिन-गोचराष्ठक-वर्ग-दशान्तर्दशादिषु अनिष्ट फल-कारका ग्रहास्तेषां सानुकूलार्थं सकलाधिव्याधि झटिति प्रशमनपूर्वक दीर्घायुष्य बलपुष्टिनैरुज्यादि सकलाभीष्ठ सिध्यर्थे श्रीमहामृत्युञ्जय प्रीत्यर्थे अमुक (शत सहस्त्रायुत लक्षादि) संख्यया श्रीमहामृत्युञ्जय जपमहं करिष्ये (वा विप्र द्वारा कारयिष्ये)। (४) अथवा 'विषूचिकादि जन-मारोपसर्गशान्त्यर्थ' वा। (५) "वृष्टिकामार्थे" वा (६) "अमुकाभियोग निवृत्यर्थे" वा (७) "अमुक दुस्वप्ननिरस-नार्थं" वा (८) "अमुक दिग्यात्रा निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धयार्थं वा (९) प्रतिसम्मुख शुक्र दोष दूरीकरणार्थं" वा (१०) "काक मैथुन दर्शनादि सूचिय सर्वारिष्ट निवृत्यर्थं वा (११) पल्लीपतन सरटारोहेणमुकदुष्टाङ्ग स्फुरणजनि-ताऽशुभफलविनाशार्थं" वा (१२) "दीर्घायुष्यपुत्रप्राप्त्यर्थं" वा (१३) "यथेच्छ धनलाभार्थं" वा (१४) अमुकोच्चपद प्राप्त्यर्थं" अथवा (१५) "अमुक कामना सिध्यर्थं" अमुक संख्या परिमित श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्र-जप-महं करिष्ये (वा ब्राह्मण द्वारा कारयिष्ये) इस प्रकार जैसा आवश्यक हो वही संकल्प करना चाहिए।

श्रीमहामृत्युञ्जय-जप-विधि—कृतनित्यक्रियो जप-कर्त्ता स्वासने प्राङमुखो दङ्मुखो वा उपविश्य धृतरुद्राक्षा भस्म् त्रिपुण्ड्रः। आचम्य, प्राणानायम्य शान्तिपाठं

पठित्वा सुमुखश्चेत्यादिना गणेशस्मरणं कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य मम (वा यजमानस्य) अमुक कामना सिद्धयर्थं श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्रस्य अमुक संख्या परिमित जपमहं करिष्ये, इति प्रत्याहिकं संकल्पः। ॐ गुरवे नमः ॥ ॐ गणपतये नमः ॥ ॐ इष्टदेवतायै नमः ॥ इति नत्वा यथोक्त विधिना भूत-शुद्धि-प्राणप्रतिष्ठां च कुर्यात्। [भावार्थ यह है कि जप करने वाला नित्य क्रिया के बाद कृष्णाजिन व्याघ्रचर्म, कुशा, दर्भ अथवा उनमें से किसी यथोचित आसन पर पूर्व या उत्तर मुख बैठकर प्रथम आचमन, प्राणायाम, शरीर-शुद्धि, आसन शुद्ध करें, तत्पश्चात् शांति पाठ ध्यानपूर्वक करके गुरु, गणेश एवं इष्टदेव का ध्यान करें तथा पूर्वोक्त 'संकल्पविधि' में कहे हुए प्रकार से प्रतिज्ञा-संकल्प करें और तब भूत शुद्धि करें।]

भूतशुद्धि—ॐ तत्सदद्येत्यादि मम अमुक प्रयोग सिध्यर्थे भूतशुद्धि प्राण प्रतिष्ठां च करिष्ये। ॐ आधार शक्ति कमलासनाय नमः, इत्यासनं सम्पूज्य। पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मोदेवता सुतलं छन्दः विनियोगः। "पृथिवीत्वयाधृतालोका देवित्वं विष्णुनाधृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।" गन्धपुष्पादिना पृथ्वी सम्पूज्य कमलासनाय भूतशुद्धि कुर्यात्। अन्यत्र कामना भेदेन अन्यासनयापि कुर्यात्, तत्रायं क्रमः। पदादि

जानु पर्यन्तं पृथ्वी स्थानं तच्चतुरस्रं पीतवर्णं ब्रह्मदैवतं वमिति बीजयुक्तं ध्यायेत् । जान्वादिनाभि पर्यन्तं आपस्थानं तच्चार्द्धचन्द्राकारं शुक्लवर्णं पद्मलाञ्छितं विष्णु दैवतंलमितिबीजयुक्तं ध्यायेत् । नाभ्यादिकंठपर्यन्तं अग्निस्थानं त्रिकोणकारं रक्तवर्णं स्वस्तिकलाञ्छितं रुद्रदैवतं रमिति बीजयुक्तं ध्यायेत् । कण्ठाधिभ्रू पर्यन्तं वायुस्थानं षट्कोणकारं षड्बिन्दु लाञ्छितं कृष्णवर्ण ईश्वर दैवतं यमितिबीजयुक्तं ध्यायेत् । भ्रू मध्यादिब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं आकाशस्थानं वृत्ताकरो ध्वजलाञ्छितं सदाशिव दैवतं हमिति बीजयुक्तं ध्यायेत् । एवं स्वशरीरे पञ्चमहाभूतानि ध्यात्वा प्रविलापनं कुर्यात् । तद्यथा पृथ्वीमप्सो, अपोऽग्नौ, अग्निवायौ, वायुमाकाशे । आकाशं तन्मात्राऽहं कारमहदात्मिकायां मातृका संज्ञकशब्द ब्रह्मस्वरूपायां हृल्लेखार्धभूतायां प्रकृतिमायायां प्रविलापयामि तथा त्रिविधां मायां च नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त स्वभावे स्वात्म प्रकाशरूप सत्य ज्ञानानन्तानंद लक्षणे परकारणे परमार्थ भूते परब्रह्माणि प्रविलापियामि । तच्च नित्यव शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावं सच्चिदानन्द स्वरूपं परिपूर्णं ब्रह्मैवापमस्मीति भावयेत् । एवं ध्यात्वा—

यथोक्त स्वरूपात्प्रणवात्मकात् परब्रह्मणः सकाशात् हृल्लेखार्द्धभूता । सर्वमन्त्रमयी मातृका संज्ञका शब्द ब्रह्मात्मिकामहदहं कारादिपं चेतन्मात्रादि समस्त प्रपञ्चकारणभूता प्रकृतिरूपा यायारज्जुसर्पवत् विवर्तरूपेण

प्रादुर्भूता इति ध्यात्वा । तस्या मायायाः सकाशात् यथोक्तमाकाशमुत्पन्नं आकाशाद्वायुरुत्पन्नः । वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी समजायत, इति ध्यात्वा । तेभ्यः पञ्चमहाभूतेभ्यः सकाशात स्व शरीरं तेजः पुञ्जात्मकं पुरुषार्थ साधनदेवयोग्यमुत्पन्नमिति ध्यात्वा । तस्मिन् शरीरे सर्वात्मकं सर्वज्ञं सर्वशक्ति संयुक्तं समस्त-देवतामयं सच्चिदानन्द स्वरूपं ब्रह्मात्मरूपेणानुप्रविष्ठमिति भावयेत्, इति भूतशुद्धिः । (श्रीमहामृत्युञ्जयादि अनुष्ठानों में उनकी साधना के कोई-कोई अङ्ग बड़े क्लिष्ट होते हैं । उनको यथोक्त विधि से करना आजकल के लोगों के लिए महा कठिन है । यहां इस 'भूतशुद्धि' को ही देखिए । इसे यथावत्सम्पन्न करना सबके लिए अशक्य नहीं तो कठिन अवश्य है । जिनको प्राणायाम (स्वांस के चढ़ाने, उतारने और रोकने) का अच्छा अभ्यास हो और वे उसके द्वारा अपने शरीर के किसी भी अङ्ग की जीवात्म-शक्ति को वहां से हटाकर दूसरे स्थान में रोक रखने की सामर्थ्य रखते हों, वे ही वह भूत-शुद्धि कर सकते हैं अन्यथा ध्यानमात्र कर लेना उचित है । हमारा शरीर अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश इन पञ्चमहाभूतों से बना हुआ है । शरीर के जिस-जिस अङ्ग में इन भूतों का आधिपत्य एवं संचार है और जहां-जहां यह निज स्वभाव के अनुसार

कार्य करते हैं, उन स्थानों के स्वरूप का ध्यान कर वहाँ के पृथ्वी आदि तत्त्वों को उत्तरोत्तर एक दूसरे में मिलाने, स्थिर रखने और फिर सबको यथास्थान स्थित करने से भूतशुद्धि अर्थात् प्राणवायु की शुद्धि होती है। ऐसा करने से वह मनुष्य दैवी-शक्ति सम्पन्न ऋषि तुल्य हो जाता है और उसके किए हुए प्रयोग प्रायः सफल ही होते हैं। शरीर में पाँवों से जंघा-पर्यन्त पृथ्वी तत्व का स्थान है। वह चौकोर, पीतवर्ण, ब्रह्मदैवत, वज्रचिह्न और वह बीज से युक्त हैं। जंघा से नाभि पर्यन्त जल-तत्त्व का स्थान है वह अर्द्धचन्द्राकार श्वेतवर्ण, कमल-चिह्न से युक्त, विष्णु दैवत और लं बीज से युक्त है। नाभि से कण्ठ तक अग्नि-तत्व का स्थान है। वह त्रिकोण, रक्तवर्ण स्वस्तिक से चिह्नित, रुद्रदैवत और रं बीज से युक्त है। कण्ठ से भ्रू पर्यन्त वायु-तत्त्व का स्थान है जो षट्कोणाकार, कृष्णवर्ण, ६ विन्दु से चिह्नित, ईश्वर दैवत् एवं आकाश-तत्त्व का स्थान गोलाकार, ध्वजलांछित, धूम्रवर्ण, सदाशिव दैवत और हं बीज से युक्त है। उपरोक्त विषय उत्कृष्ठ योगाभ्यासियों और तन्त्र के तत्वज्ञ विद्वानों के काम का है। इसलिए इसका आशय संक्षेप से लिखना अनुपयोगी समझ कर इसे छोड़ दिया गया है।

विनियोग मन्त्र—(हाथ में जल लेकर यह मन्त्र पढ़ें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्धनम् । ऊर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः ह्रौं ॐ । अस्य श्रीमहा-मृत्युञ्जय मन्त्रस्य वामदेवकहोलवशिष्ठा ऋषयः पंक्तिर्गा-यत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि सदाशिव महामृत्युञ्जय रुद्रो देवता ह्रीं शक्तिः श्रीं बीजं महामृत्युञ्जय प्रीतये ममाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः (पश्चात् हाथ का जल भूमि पर छोड़ दें)।

ऋष्यादि-न्यास—वामदेवकहोलवशिष्ठा ऋषयः मूर्ध्नि (यह मन्त्र बोलकर शिर-स्पर्श करे)। पंक्तिर्गायत्री अनुष्ठुप्छन्दान्सि वक्त्रे (मुख-स्पर्श करें)। ह्रीं शक्तये नमो लिंगे (लिंग-स्पर्श करें। श्रीं बीजाय नमः पादयोः (चरण-स्पर्श करें।)

कर-न्यास—ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः (अंगूठा का स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवन तर्जनीभ्यां नमः (तर्जनी का स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धि पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिर से जटिने स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः (मध्यमा

अंगुली का स्पर्श करें) ॐ ह्रौं जूं सः भूर्भुव स्वः उर्वा-रुक्मिव बन्धनान् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरात्मकाय ह्रां ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः (अनामिका अंगुली का स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुः सामगन्त्रत्रयाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठा अंगुली का स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयायज्वलज्वालाय मां रक्ष रक्ष अघोराय अस्त्राय करतल करपृष्ठाभ्यां नमः (यह मन्त्रोच्चारण करते हुए पूरे करतल का स्पर्श करें)।

अंग-न्यास—उपर्युक्त कर-न्यास के मन्त्रों द्वारा ही अङ्ग-न्यास किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि प्रथम मंत्र में 'अंगुष्ठाभ्यां नमः' के स्थान पर 'हृदयाय नमः कह कर हृदय का स्पर्श करना चाहिए। इसी भांति अग्रिम मंत्रों में 'तर्जनीभ्यां नमः' के स्थान पर 'शिर से स्वाहा', मध्यमाभ्यां नमः' के स्थान पर 'शिषायैंवौषट्', अनामि-काभ्यां नमः' के स्थान पर 'कवचाय हुम्', 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' के स्थान पर 'नेत्रत्रयायवोषट्' और करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः' के स्थान पर 'अस्त्राय फट्' कहकर क्रमशः शिर, शिखा, भुजा, नेत्र एवं सम्पूर्ण बाह्य शरीर का स्पर्श करें।

पद-न्यास—त्र्यम्बकं शिरसि (शिर का स्पर्श करें)। यजामहे भ्रुवोः (दोनों भौंह स्पर्श करें)। सुगन्धि नेत्रयोः (नेत्र स्पर्श करें)। पुष्टिवर्धनं मुखे (मुख स्पर्श करें)। उर्वारुकं गण्डयोः (गले का स्पर्श करें)। इव हृदये (हृदय स्पर्श करें)। बन्धनात् जठरे (कमर स्पर्श करें)। मृत्योर्लिंगे लिङ्ग स्पर्श करें)। मुक्षीय उर्वोः (घुटना स्पर्श करें)। मा जान्वोः (जंघा स्पर्श करें)। अमृतात् पादयोः (पैर स्पर्श करें)। मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानं कुर्यात् तत्पश्चात् एकाग्र चित्त होकर इस मन्त्र से ध्यान करें।

ध्यान-मन्त्र—हस्ताम्भोज युगस्थ कुम्भ युगला-दुद्धृत्यतोयं शिरः। सिंचतं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ॥ अक्षस्त्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्त्रवत्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयं ॥१॥ चन्द्रोद्भासितमूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वहद्हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यसमलं हास्यास्य पङ्केरुहम् ॥ सूर्येन्द्वग्नि विलोचनं करतले पाशाक्षसूत्रांकुशाम्भोजं विभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे ॥२॥ (ध्यान का स्वरूप—भगवान मृत्युञ्जय के आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपर के दोनों कर-कमलों से दो घड़ों को उठाकर उसके नीचे के दो हाथों से जल को अपने सिर पर उँड़ेल रहे हैं। सबसे नीचे दो हाथों में भी दो घड़े लेकर अपनी गोद में रख लिया है। शेष दो हाथों में वे रुद्राक्ष तथा मृग धारण किए

हुए हैं। वे कमल के आसन पर बैठे हैं और उनके शीर्षस्थ चन्द्र से निरन्तर अमृत-वृष्टि के कारण उनका शरीर भीगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथा उन्होंने मृत्यु को सर्वथा जीत लिया है। उनके वामाङ्ग-भाग में गिरिराज-नन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं।)

मानसोपचार-पूजन—भगवान के उपर्युक्त स्वरूप का चिन्तन करते हुए आगे लिखे प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण के साथ क्रमशः मनःकल्पित गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः मन्त्र-पुष्प ध्यान द्वारा भगवान को अर्पित करें; इसे मानसोपचार-पूजन कहते हैं—ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। ॐ हं आकाशात्मकं समर्पयामि। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि। ॐ रं तैजसात्मकं दीपं समर्पयामि। ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि। ॐ सं सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं समर्पयामि॥

जप-मन्त्र—श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्र-जप के लिए जप-माला शुद्ध रुद्राक्ष की होनी चाहिए। इसके अभाव में उंगलियों पर ही जप करना चाहिए। मूल मन्त्र यह है—"ॐ हौं ॐ जूं सः, भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ॥" यह स्पष्ट युक्त मन्त्र है इसका प्रायः सवा लाख जप सर्वार्थ-साधक माना गया है

जप-संख्या पूरा कर लेने के पश्चात् पूर्वोक्त रीति से पुनः कर-न्यास एवं अङ्ग-न्यास करें; तत्पश्चात् प्रार्थना-अर्पण करें।

प्रार्थना-अर्पण—फूल लेकर हाथ जोड़ें और इस मंत्र से प्रार्थना करें "गुह्यातिगुह्य गोप्तात्वं गृहाणास्मद् कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वरः। मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्। जन्ममृत्युजरा-रोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः" (फूल भूमि पर छोड़ दें; फिर हाथ में जल लेकर इस मन्त्र को बोलते हुए अर्पण करें) "अनेन महामृत्युञ्जय जपाख्येन कर्मणा श्रीमहामृत्युञ्जयः प्रीयतां मम् ॥" हाथ का जल भूमि पर छोड़ दें।"

हवन—इस शताक्षरा गायत्री मन्त्र से करें—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ जातवेदसेसुनवामसोममरातीयतोनी दहाति वेदः स नः हर्षं दति दुति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुदुरितात्यग्निः। ॐ त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा। इस प्रकार आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त इस प्रयोग को सविधि करने-कराने से अवश्य ही यथेष्ट फल मिलता है।

शक्ति पीठ

शिवपुराण और श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि सती ने दक्ष के यज्ञ में योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर दिया, किन्तु तन्त्रों का वर्णन है कि सती ने प्राणायाम करके मूर्धा से प्राण का विसर्जन किया। जब भगवान शिव को यह पता लगा, वे वीरभद्र के साथ स्वयं ही दक्ष की यज्ञशाला में पधारे। वीरभद्र और शिवगणों ने दक्ष का यज्ञ ध्वंस कर दिया। भगवान महेश्वर ने सती का शरीर उठाकर अपने वाम स्कन्ध पर रखा और वे अनन्त-करुणावरुणालय प्रेमैकधाम त्रिलोकी को यह दिखलाने के लिए कि जैसा प्रेम आराधक भगवान से करता है, भगवान में वह वैसा ही—उससे अनन्तगुणा—प्रेम प्रतिफलित होता है। सदाशिव सती के शरीर को लिए उन्मत्त की भाँति त्रिलोकी में विचरण करने लगे। शिवगण अपने प्रभु की इस व्याकुल अवस्था के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे और वे दक्ष के अनुयायियों से ही नहीं, सम्पूर्ण वैदिक कर्मकाण्ड और उसके अनुमोदकों से चिढ़ गये थे।

पृथ्वी में रुद्रगणों का उत्पात यज्ञ, हवन, कर्मकाण्ड, वेदपाठ सबको आशंकाग्रस्त कर चुका था। द्विजों के लिए वे जनपद में हों या वन में, कहीं पर भी शरण नहीं प्राप्त होती थी। देवता भी रुद्र पार्षदों के क्रोध के आखेट थे। वे भी कहीं स्थिर नहीं रह पाते थे।

देवताओं ने भगवान ब्रह्मा की शरण ली। उनसे प्रार्थना की। सृष्टि कर्ता ने कहा—'प्रलय के अधिष्ठाता जब तक शान्त नहीं हो जाते, उनके परिकरों का उत्पात शान्त नहीं हो सकता। भगवान महेश्वर के पार्षदों को पराभव नहीं दिया जा सकता। ब्रह्मा देवताओं के साथ भगवान नारायण की शरण में गये। उन्होंने प्रार्थना की 'आप सृष्टि के रक्षक हो और महेश्वर का आप पर असीम अनुराग है। वे किसी भी अवस्था में आप पर रोष नहीं कर सकते, आपको विस्मृत नहीं कर सकते, इसलिए आप ही कोई ऐसा यत्न करो जिससे वे शान्त हों। उनके शान्त होने पर ही रुद्रगणों का आक्रोश और उस आक्रोश से उत्पन्न हुआ उत्पात शान्त होगा।'

भगवान नारायण ने अपने चक्र से सती के उस निष्प्राण शरीर को, जिसे कंधे पर लेकर रुद्र उन्मत्त त्रिलोकी में घूम रहे थे, काटना प्रारम्भ किया। सती के

अङ्ग के जो अंश जहाँ गिरे, वहीं शक्ति पीठ हो गये। क्योंकि सती महाशक्ति का साकार विग्रह थीं, उनका शरीर जड़ नहीं होता और उनका एक अंग दीखने पर भी सम्पूर्ण महाशक्ति के स्वरूप में भी रहता है। भगवान महेश्वर क्योंकि महाशक्ति से नित्य अभिन्न हैं, प्रत्येक शक्ति पीठ पर वे भी उस पीठ के रुद्र रूप से वहीं विद्यमान हैं और उनके शरीर में भगवती गङ्गा होने के कारण उस देवपदी के अंश से समुद्‌भूत सरिता भी शक्ति पीठ के समीप होती ही है।

प्रत्येक शक्ति पीठ में देवी का स्थान, भगवान् शिव स्थान और नदी—ये तीनों आधे योजन के भीतर ही होते हैं।

शक्ति-पीठ की संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। यह 'कल्याण शक्ति अङ्क' (गीता प्रेस, गोरखपुर) के अनुसार है। इसमें से अनेक का स्थान अब अज्ञात हो गया है। कुछ पाकिस्तान में और कुछ बंगला देश में पड़ गये हैं। जिनके स्थान ठीक जाने जा सके हैं, उनके वर्तमान नाम दे दिये गये हैं।

किस-किस स्थान पर सती का कौन-कौन अङ्ग गिरा था तथा कौन-कौन भैरव और शक्ति वहाँ रहती हैं, तन्त्रचूड़ामणि में इस विषय में जो कुछ उल्लेख है, उसकी तालिका निम्न प्रकार है—

स्थान	अंग तथा आभूषण	शक्ति	भैरव
१. हिंगुलाज (क्वेटा के पास)	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टवीशा	भीमलोचन
२. शर्करार	तीन चक्षु	महिशमर्दिनी	क्रोशीश
३. सुगन्धा (त्र्यम्बकेशर)	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
४. काश्मीर	कण्ठदेश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर
५. ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्त भैरव
६. जलन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
७. वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
८. नेपाल	जानु	महामाया	कपाली
९. मानस (मानसरोवर-तिब्बत)	दक्षिणहस्त	दाक्षायणी	अमर
[illegible]	[illegible]	विमला	जगन्नाथ

१०. उत्कल में विरजाक्षेत्र (पुरी)	नाभिदेश	विमला	जगन्नाथ
११. गण्डकी	गण्डस्थल	गण्डकी	चक्रपाणि
१२. बहुला	वाम बाहु	बहुलादेवी	भीरुक
१३. उज्जयिनी	कूर्पर	मंगलचण्डिका	कपिलाम्बर
१४. त्रिपुरा	दक्षिणापाद	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरेश
१५. चहल	दक्षिणबाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
१६. त्रिस्रोता	वामपाद	भ्रामरी	भैरवेश्वर
१७. कामगिरि (कामाक्षा)	योनिदेश	कामाख्या	उमानन्द
१८. प्रयाग	हस्तांगुलि	ललिता	भव
१९. जयन्ती	वाम जघा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
२०. युगाद्या	दक्षिणांगुष्ठ	भूतघात्री	क्षीरखण्डक
२१. कालीपीठ (आदिकाली कलकत्ता)	दक्षिणपादांगुलि	कालिका	नकुलीश
२२. किरीट	किरीट	विमला	संवर्त्त
२३. वाराणसी	कर्णकुण्डल	विशालाक्षी-मणिकर्णी	कालभैरव

स्थान	अंग तथा अंगभूषण	शक्ति	भैरव
२४. कन्याश्रम (कन्याकुमारी)	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष
२५. कुरुक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु
२६. मणिबन्ध (पुष्कर)	दो मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
२७. श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
२८. काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु
२९. कालमाधव	नितम्ब	काली	असितांग
३०. शोणदेश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन
३१. रामगिरि (नागपुर के पास)	अन्य स्तन	शिवानी	चण्डभैरव
३२. वृन्दावन (मथुरा)	केशपाश	उमा	भूतेश
३३. शुचि	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
३४. पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र
३५. करतोयातट	तल्प	अर्पणा	वामनभैरव
३६. श्रीपर्वत	दक्षिण गुल्फ	श्रीसुन्दरी	सुन्दरानंदभैरव

३७. विभाष	वामगुल्फ	कपालिनी	सर्वानन्द
३८. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
३९. भैरवपर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	अवन्ती	लम्बकर्ण
४०. जनस्थल	दोनों चिबुक	भ्रामरी	विकृताक्ष
४१. सर्वशैल	वाम गण्ड	राकिनी	वत्सनाभ
४२. गोदावरी तीर	गण्ड	विश्वेशी	दण्डपाणि
४३. रत्नावली	दक्षिणस्कन्ध	कुमारी	शिव
४४. मिथिला	वामस्कन्ध	उमा	महोदर
४५. नलहाटी	नला	कालिकादेवी	योगेश
४६. कर्णाट	कर्ण	जयदुर्गा	अभीरु
४७. वक्रेश्वर	मनः	महिषमर्दिनी	वक्रनाथ
४८. यशोर (जसोर)	पाणिपद्म	यशोरेश्वरी	चण्ड
४९. अट्टहास	ओष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश
५०. नन्दिपुर	कण्ठहार	नन्दिनी	नन्दिकेश्वर
५१. लंका	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर

देवीभागवत में एक सौ आठ पीठ-स्थानों का उल्लेख देखने में आता है। तन्त्रचूड़ामणि में स्थान, अंग, भैरव और शक्ति का नाम जैसा विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, देवी भागवत में वैसा नहीं है। इसमें महर्षि वेदव्यास ने जनमेजय के प्रश्नानुसार पीठस्थान और वहाँ के अधिदेवता का नाम उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

स्थान	देवता	स्थान	देवता
१. वाराणसी	विशालाक्षी	२३. मलय	रम्भा
२. नैमिषारण्य	लिंगधारिणी	२४. एकाग्र	कीर्तिमती
३. प्रयाग	ललिता	२५. विश्व	विश्वेश्वरी
४. गन्धमादन	कामुकी	२६. पुष्कर	पुरुहूता
५. दक्षिणमानस	कुमुन्दा	२७. केदार	सन्मार्गदायिनी
६. उत्तरमानस	विश्वकामा	२८. हिमवतपृष्ठ	मन्दा
७. गोमन्त	गोमती	२९. गोकर्ण	भद्रकर्णिका
८. मन्दर	कामचारिणी	३०. स्थानेश्वर (कुरुक्षेत्र)	भवानी
९. चैत्ररथ	मदोत्कटा		

१०. हस्तिनापुर	जयन्ती	३१. बिल्वक	बिल्वपत्रिका
११. कान्यकुब्ज (कन्नौज)	गौरी	३२. श्रीशैल	माधवी
१२. भद्रेश्वर	भद्रा	३३. शिवकुण्ड	शुभानन्दा
१३. वाराहशैल	जया	३४. देविकातट	नन्दिनी
१४. कमलालय	कमला	३५. द्वारावती	रुक्मिणी
१५. रुद्रकोटि	रुद्राणि	३६. वृन्दावन	राधा
१६. कालाञ्जर	काली	३७. मथुरा	देवकी
१७. शालग्राम	महादेवी	३८. पाताल	परमेश्वरी
१८. शिवलिंग	जलप्रिया	३९. चित्रकूट	सीता
१९. महालिंग	कपिला	४०. विन्ध्य	विन्ध्यावासिनी
२०. माकोट	मुकुटेश्वरी	४१. करवीर	महालक्ष्मी
२१. मायापुरी	कुमारी	४२. विनायक	उमादेवी
२२. सन्तान	ललिताम्बिका	४३. वैद्यनाथ	आरोग्या

स्थान	देवता	स्थान	देवता
४४. गया	मंगला	४६. पुण्ड्रवर्द्धन	पाटला
४५. पुरुषोत्तम	विमला	७०. महाकाल	महेश्वरी
४६. सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी	७१. उष्णतीर्थ	अभया
४७. हिरण्याक्ष	महोत्पला	७२. विन्ध्यपर्वत	नितम्बा
४८. विपाशा	अमोघाक्षी	७३. माण्डव्य	माण्डवी
५०. सुपार्श्व	नारायणी	७४. माहेश्वरीपुर	स्वाहा
५१. त्रिकटु	रुद्रसुन्दरी	७५. छगलण्ड	प्रचण्डा
५२. विपुल	विपुला	७६. अमरकण्टक	चण्डिका
५३. मलयाचल	कल्याणी	७७. सोमेश्वर	वरारोहा
५४. सह्याद्रि	एकवीरा	७८. प्रभास	पुष्करावती
५५. हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका	७९. सरस्वती	देवमाता
५६. रामतीर्थ	रमणी	८०. तट	पारावारा
५७. यमुना	मृगावती	८१. महालय	महाभागा

५८. कोटितीर्थ	कोटवी
५९. मधुवन	सुगन्धा
६०. गोदावरी	त्रिसन्ध्या
६१. गंगाद्वार (हरिद्वार)	रतिप्रिया
६२. शोणसंगम	सुभद्रा
६३. सिद्धवन	लक्ष्मी
६४. भरताश्रम	अनंगा
६५. जालन्धर	विश्वमुखी
६६. किष्किन्धापर्वत	तारा
६७. देवदारुवन	पुष्टि
६८. काश्मीरमण्डल	मेधा
६९. हिमाद्रि	भीमादेवी

८२. पयोष्णी	पिंगलेश्वरी
८३. कृतशौच	सिंहिका
८४. कार्तिक	अतिशांकरी
८५. उत्पलावर्त्तक	लीला (लोला)
८६. कुशद्वीप	कुशोदका
८७. हेमकूट	मन्मथा
८८. कुमुद	सत्यवादिनी
८९. अश्वत्थ	वन्दनीया
९०. कुबेरालय	निधि
९१. वेदवदन	गायत्री
९२. शिवसन्निधि	पार्वती
९३. देवलोक	इन्द्राणी
९४. ब्रह्मामुख	सरस्वती

स्थान	देवता	स्थान	देवता
९५. विश्वेश्वर	तुष्टि	१०२. उत्तरकुरु	औषधि
९६. शंखोद्धार	धरा	१०३. सूर्यविम्ब	प्रभा
९७. पिण्डारक	घृति	१०४. मातृमध्य	वैष्णवी
९८. चन्द्रभागा	कला	१०५. सतीमध्य	अरुन्धती
९९. अच्छोद	शिवधारिणी	१०६. स्त्रीमध्य	तिलोत्तमा
१००. वेणा	अमृता	१०७. चित्रध्मय	ब्रह्मकला
१०१. बदरी	उर्वशी	१०८. सर्वप्राणीवर्ग	शक्ति

श्रीमद् देवी भागवत पुराण

वेद व्यास जी रचित अठारह पुराणों में देवी भागवत पुराण का विशेष महत्त्व है। मां की अद्भुत लीलाओं का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ सर्वोपरि है; संकट ग्रस्त व्यक्तियों के लिए इस महान ग्रन्थ का पाठ करना संकट से मुक्त कराता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के पाठ को सुविधा के लिए नवाह्न पारायण के अनुसार २२ भागों में भी बांट दिया गया है, इस प्रकार नवरात्रों में नवाह्न परायण करने का अत्यधिक फल है। पुस्तक की भाषा बहुत सरल है ताकि कम पढ़े-लिखे, वृद्ध, स्त्रियाँ और बच्चे भी सुविधा से पढ़कर ज्ञान लाभ कर सकें।

श्री दुर्गा स्तुति

(लेखक व गायक—एम. एस. पुण्डीर)

इस पुस्तक में दुर्गा सप्तशती का सम्पूर्ण कविता पाठ, प्रार्थना, स्तुति, कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, नवरात्र कथा, तारा रानी कथा और आरतियां आदि दी गई हैं।

सचित्र भर्तृहरि शतक

अनुवादक—पं० ज्वाला प्रसाद जी

भारत के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि के नाम को कौन नहीं जानता ? उन्हीं की यह महान् रचना, जिसमें वैराग्य शतक, नीति शतक व श्रृंङ्गार शतक तीनों को प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक शतक के साथ ८-८ चित्र हैं यानी कुल पुस्तक में दिए गये २४ चित्रों ने इस ग्रन्थ को रोचक भी बना दिया है। प्रत्येक श्लोक के साथ उसका सरल हिन्दी अनुवाद दिया गया है पुस्तक के प्रारम्भ में दी गई भर्तृहरि की जीवनी इसकी एक विशेषता है।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

श्री विष्णु सहस्त्रनाम भाषा टीका

भाषाकार : पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी

महाभारत में दिए इस महान स्तोत्र की बड़ी महानता है। भगवान विष्णु के १००० नामों का बखान इस स्तोत्र में बड़े विचित्र ढंग से किया हुआ है। संस्कृत श्लोक व हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक के अन्त में विष्णजी के १००० नामों की गणना गिनती सहित कराई गई है।

हनुमान ज्योतिष

पं० बिट्ठलनाथ बेताल कृत

बजरंगी श्री हनुमान जी का हृदय में ध्यान करके इस पुस्तक में दिए चक्रों में उंगली रखने से आपको हानि-लाभ, गमन-अवगमन, फेल-पास; शादी-ब्याह आदि सभी का उत्तर मिलता है। विश्वास से किये गये प्रश्नों का मनोवांछित फल श्री हनुमान जी की कृपा से मिलता है।

स्वप्न फल विचार

लेखक : ज्योतिषाचार्य श्री नाथ जी

स्वप्न क्या और कैसे ? स्वप्न के भेद, स्वप्न फल का समय; स्वप्न द्वारा भविष्य का पता लगाना, स्वप्न में दिखाई देने वाली शुभ और अशुभ बातें, मनोविज्ञान और स्वप्न, योग और स्वप्न तथा ज्योतिष से सम्बन्धित स्वप्नों के फलितार्थ इत्यादि।

श्री काली उपासना

संग्रहकर्ता : स्वामी उग्रचण्डेश्वर 'कपाली'

इस पुस्तक में काली उत्पत्ति की कथा, काली स्तुति, काली का स्वरूप, काली साधन यन्त्र, कालिका सहस्त्र नाम स्तोत्र, कालिकाष्टक और कई आरतियाँ श्री काली माता को प्रसन्न करने के लिए दी गई हैं। साधकों और मन्त्र-तन्त्र के इच्छुकों के लिए उत्तम पुस्तक है। ८-७०

कौटलीय अर्थशास्त्र का निचोड़

चाणक्य सूत्र संग्रह

व्याख्याकार—स्व० श्री रामवतार विद्याभास्कर

इस व्याख्यायमान ग्रन्थ में कौटलीय अर्थशास्त्रसे चुने गये ५८३ सूत्रों को मूल संस्कृत व हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थकार ने इन सूत्रों में धर्म और राजनीति को अलग-अलग समझने वाले आज के पाठकों के सम्मुख राजनीति को धर्म से अलग न होने देने वाला दृष्टिकोण रखा है। राष्ट्र कल्याण की दृष्टि से धर्म तथा राजनीति सम्बन्धी विचारों के परिमार्जन का पुस्तक में सफल प्रयास हुआ है। पुस्तक के परिशिष्ट में चाणक्य सूत्रों का ऐतिहासिक आधार, चाणक्य का मन्त्रित्व त्याग तथा आर्य चाणक्य का इतिहास सम्बन्धी विवेचन ने ग्रन्थ के महत्त्व को कई गुना बढ़ा दिया हैं। बहुत सुन्दर कागज पर छपी पुस्तक, प्लास्टिक लेमीनेटिड कवर।

चाणक्य नीति (भाषा-टीका)

टीकाकार—पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी

नीतिशास्त्र वेत्ता आचार्य चाणक्य को कौन नहीं जानता ? कूटनीतिज्ञ चाणक्य की इस रचना को मूल संस्कृत श्लोकों और सरल हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत किया गया है।

भारत दर्शन (चारों धाम सप्तपुरी यात्रा)

उत्तराखण्ड के तीर्थ—बद्री, केदार, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी तथा समीपवर्ती अन्य सभी तीर्थों का वर्णन, जगन्नाथ धाम, रामेश्वरधाम, द्वारका धाम, माया पुरी, काशी पुरी, कांची पुरी, अयोध्या पुरी' अवन्तिका पुरी, इलाहाबाद, सोरों, गंगा सागर, भुवनेश्वर, बौद्ध गया और दक्षिण भारत के मुख्य तीर्थ, नेपाल क्षेत्र के पशुपतिनाथ व मुक्ति नाथ, भारत के प्रमुख नगर तथा पर्वतीय स्थलों की जानकारी इस पुस्तक में दी गई है।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

शिव भक्तों के लिए—

शिव उपासना

इस पुस्तक में शिव महिम्न स्तोत्र, शिव ताण्डव, शिव चालीसा, शिव स्तुति, शिवाष्टक, शिवस्तवन, शिव स्तोत्र, शिव नामावली, शिव-ध्यानम्, महामृत्युंजय स्तोत्र व जपविधि, भजन और आरतियाँ दिए गये हैं।

सम्पूर्ण शिव पुराण

अनुवाद—पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी

भगवान शकर का प्रत्यक्ष रूप 'शिव पुराण' मनुष्य की चित्त शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। बड़े भाग्य तथा अनेक जन्मों के पुण्य से ही बुद्धिमान मनुष्यों में इसके पढ़ने में प्रीति होती है। सौ राजसूय यज्ञों से प्राप्त होने वाला फल इस अकेले शिव पुराण के पढ़ने से मिल जाता है। अमृत पीने वाला तो केवल स्वयं अमर हो पाता है किन्तु शिव पुराण की कथा के अमृत को पीने वाला अपने सारे कुल को ही अमर कर देता है। मुक्ति चाहने वाले प्राणी को प्रतिदिन इस पुराण का पठन-पाठन करना चाहिए। कलयुग में मनुष्यों के हित के लिए ही शंकर जी ने ये अमृतरूपी पुराण कहा है।

सन्तवाणी

संग्रहकर्ता—एच० बी० सिंह

इस पुस्तक में, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, मीराबाई, गुरुनानक ब्रह्मानन्द, स्वामी रामतीर्थ, दादूदयाल, सुन्दरदास, रविदास इत्यादि कई सन्तों की चुनी हुई वाणी का संग्रह है।

श्री भैरव उपासना

इस ग्रन्थ में भैरव उत्पत्ति की कथा, भैरव चालीसा, भैरवाष्टक, भैरव के १०८ नाम, भैरव सहस्त्र नाम स्तोत्र, बटुक भैरव यन्त्र, भैरव उपासना विधि, भैरों नाथ दन्त कथा और भैरव जी की आरतियाँ इत्यादि सम्मिलित की गई हैं।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

'बहल' की अन्य रोचक और चर्चित पुस्तकें

- हस्तरेखा विज्ञान के गूढ़ रहस्य
- सामुद्रिक शास्त्र : पंचागुली साधना
- शरीर लक्षण विज्ञान
- मृत आत्माओं से संपर्क और अलौकिक साधनाएँ
- पराविज्ञान की साधना और सिद्धियाँ
- सुखी जीवन के लिए टोटके और मंत्र
- सौन्दर्य लहरी (१०० मंत्रों और व्याख्या सहित)
- गोरखतंत्र
- मुस्लिम तंत्र
- वेदों में तंत्र
- वनस्पति तंत्र
- सुगम तांत्रिक क्रियायें
- रत्न और रूद्राक्ष
- लाटरी ज्योतिष
- चाणक्य विरचित- तंत्र मंत्र यंत्र
- आपका राशिफल और लाटरी गाइड
- चमत्कारी मंत्र साधना
- नाग और नागमणि
- पृथ्वी में गढ़ा धन कैसे पायें

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
हरिद्वार